TOPIC - 3

शिक्षण अधिगम के सिद्धान्त

(Principles of Teaching Learning)

शिक्षण (Teaching) –

ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार शिक्षण का अर्थ है "ज्ञान या कौशल प्रदान करना", "अनुदेश या उपदेश देना" तथा "प्रभावित और प्रेरित करना" । इस अर्थ का विश्लेषण करने पर हम कह सकते हैं कि शिक्षण एक ऐसी गतिविधि है जो अधिगम में सहायता करती है। शिक्षक एक सहायक है जो शिक्षार्थियों की शैक्षिक आवश्यकताओं की संतुष्टि इस प्रकार करता है कि वे समाज की उन्नति के लिए महत्वपूर्ण और सकारात्मक भूमिका का निर्वाह करें। इस प्रकार शिक्षकों के कंधों पर एक महान जिम्मेदारी रहती है

एक शिक्षक की भूमिका विविधताओं से पूर्ण है । शिक्षार्थी उन्हें अपने आदर्श, प्रतिमान, निर्देशक, मार्गदर्शक, पर्यवेक्षक और कुछ अधिक के रूप में देखते हैं। शिक्षार्थी के संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास अर्थात् शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, सामाजिक, नैतिक आदि, शिक्षक के शिक्षण पर आधारित होता है ।

एक कला के रूप में शिक्षण -

इलियट इसनर ने अपनी पुस्तक "एजुकेशनल इमेजिनेशन" (1985) में शिक्षण को कला के रूप में मान्यता देने के निम्नलिखित चार कारण बताए हैं:

i) शिक्षण को इतनी कुशलता और सुंदर ढंग से निष्पादित किया जा सकता है कि शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों ही इस संपूर्ण प्रक्रिया का सौंदर्यबोध अनुभव करें।

ii) शिक्षक की गतिविधियाँ गतिशील हैं अर्थात् वे विभिन्न गुणों और आकस्मिकताओं से प्रभावित होते हैं और उसी के अनुसार परिवर्तित होते हैं। वे कठोर दिनचर्याओं और व्यवस्थाओं में निष्पादित नहीं होते ।

iii) अच्छे सौन्दर्य भाव वाले शिक्षक सामान्यतया उसे अपनी शिक्षण प्रक्रिया में शामिल करते हैं, चाहे कोई भी विषय पढ़ाया जा रहा हो ।

iv) शिक्षण का अंत पूर्व निर्धारित नहीं होता । यह प्रायः प्रक्रिया द्वारा सृजित होता है ।

इस प्रकार शिक्षण की चार इंद्रियाँ हैं: सौन्दर्यबोध के अनुभव के स्रोत के रूप में, दृष्टिकोण और गुणों के नियंत्रण पर आधारित होने के रूप में, एक अनुमानी और आकस्मिक गतिविधि के रूप में और अप्रत्याशित परिणामों को खोजने के रूप में । ये सिद्ध करते हैं कि शिक्षण को एक कला के रूप में माना जा सकता है ।

- हम कह सकते हैं कि शिक्षण को एक कला माना जा सकता है, क्योंकिः
- प्रत्येक शिक्षक अपनी अभिवृत्ति, योग्यता, व्यक्तित्व और ज्ञान के अनुसार शिक्षण करती / करता है । उदाहरण के लिए "फूल की संरचना" के शिक्षण के दौरान एक शिक्षक पारंपरिक विधि से व्याख्या कर सकती / सकता है कि इसमें चार वृत्ताकार अंग होते हैं जिनके नाम हैं: बाह्यदल, दल, पुंकेसर और स्त्रीकेंसर तथा उनकी संरचना और कार्य स्पष्ट करता है । दूसरा

शिक्षक अधिक रोचक ढंग से और अधिक सौंदर्यात्मक तरीके से व्याख्या कर सकता/सकती है। शिक्षिका बच्चों को गुड़हल का पुष्प दिखाती है । पुष्प का रंग और सुंदरता शिक्षार्थियों का ध्यान आकर्षित करेंगे । पुष्प की दृश्य सुन्दरता द्वारा एक-एक करके प्रत्येक भाग को दिखाकर उसकी व्याख्या की जा सकती है। इस प्रकार पुष्प की संरचना की सौन्दर्यबोध द्वारा व्याख्या की जा सकती है। शिक्षक की भावाभिव्यक्ति से भी शिक्षण प्रभावशाली हो सकता है। शिक्षक की आवाज़, हाव-भाव, चेहरे की अभिव्यक्ति, शारीरिक भाषा (संकेत) और आकर्षक व्यक्तित्व शिक्षण प्रक्रिया को अधिक सुंदर बना देते हैं ।

- जो अपनी कला में श्रेष्ठ होते हैं, वे कलाकार होते हैं । इसी प्रकार एक शिक्षक पारंपरिक तरीके से शिक्षण करने के स्थान पर अपनी विशेषताओं का उपयोग शिक्षार्थियों को प्रकाशित करती / करता है । शिक्षक शिक्षार्थियों को सफलतापूर्वक शिक्षित करने के लिए अपनी सकारात्मकता और प्रतिभाओं का उपयोग करती / करता है ।
- शिक्षण में लचीलापन होता है । शिक्षक और शिक्षार्थियों दोनों के लिए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होती है ।
- एक शिक्षक आलोचना और सराहना दोनों को स्वीकार करता है और सृजनात्मकता को स्थान देता है ।

एक विज्ञान के रूप में शिक्षण -

- कई शिक्षाविद् अनुभव करते हैं कि "शिक्षण एक विज्ञान है" । इसका उद्गम बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध की शैक्षिक विचारधारा में पाया जा सकता है। विशेष रूप से जॉन फ्रैडरिच हरबर्ट के लेखों के विस्तृत प्रभाव के कारण और "हरबर्टटिज्मस" (लुट्जकर, पृ. 2007) को सुनिश्चित करने के कारण। इसके आधार पर शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों को वैज्ञानिक उपागम द्वारा निर्धारित किया गया और इसी के अनुसार प्रशिक्षण प्रदान किया गया ।

- शिक्षण का यह उपागम वैज्ञानिक जाँच, विषयवस्तु की तार्किक क्रमबद्धता और इसके व्यवस्थित प्रसार पर आधारित है । उद्देश्यों को शिक्षण के लक्ष्यों के रूप में स्थापित किया जाता है। शिक्षण योजना इन उद्देश्यों की प्राप्ति के इर्द-गिर्द घूमती है। इसके लिए क्रियाकलापों को तार्किक रूप से व्यवस्थित किया जाता है और ये पारंपरिक क्रमबद्ध तरीके से पढ़ाए जाते हैं। क्योंकि शिक्षक, शिक्षण के परिणामों के लिए जवाबदेह होते हैं, इसलिए वे शायद ही कभी क्रमबद्ध शिक्षण स्वरूप से हटने का प्रयास करते हैं ।

हम कह सकते हैं कि शिक्षण एक विज्ञान है, क्योंकि :

- यह व्यवस्थित, तार्किक रूप से नियोजित और कक्षा में निष्पादित किया जाता है ।
- शिक्षण प्रारंभ करने से पूर्व शिक्षार्थी में वांछित व्यवहार परिवर्तनों को प्राप्त करने के लिए उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं ।
- सभी उपकरण, तकनीकें और प्रविधियों का नियोजन शिक्षण से पूर्व किया जाता है।
- इसमें एक अन्तर्वैयक्तिक स्पर्श सन्निहित होता है ।
- हम यह नहीं भूल सकते हैं कि अन्ततः कक्षा स्तर की विषयवस्तु को एक सीमित समय के अंदर स्थानांतरित किया जाना है । अतः शिक्षण का उपागम न्यायसंगत है।
- मानववादी उपागम उत्साह और रूचि उत्पन्न कर सकता है, परंतु अच्छा व्यवस्थित शिक्षण भी समान कार्य कर सकता है ।
- हाल ही में आए नए शिक्षण उपागम, जो वैज्ञानिक प्रकृति के हैं, वे भी सौन्दर्यबोधात्मक उपागम के समान ही लाभदायक है।

हम कह सकते हैं कि शिक्षण की दोहरी भूमिका है और एक शिक्षक को दोनों में संतुलन बनाना चाहिए ताकि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य सफलतापूर्वक पूरा किया जा

सके। जब कभी और जहाँ कहीं आवश्यकता हो, शिक्षण की भूमिका को अंतः परिवर्तित किया जाना चाहिए ।

एक नैतिकतापूर्ण क्रियाकलाप(Ethical activities) के रूप में शिक्षण -

सामान्य विद्यालयों के उद्गम और शिक्षा प्रणालियों के विकास के समय से ही चरित्र का विकास शिक्षा का सुस्पष्ट लक्ष्य रहा है (मैकलिलन, 1999) | हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं और यह अच्छी प्रकार जानते हैं कि शिक्षा का लक्ष्य बच्चे का सर्वांगीण विकास है । इस प्रकार इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु शिक्षक को एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना है | दूसरे शब्दों में यह कहना गलत नहीं होगा शिक्षण एक नैतिकतापूर्ण व्यवसाय है। शिक्षक और समाज के अंदर एक संघर्ष चला आ रहा है, जब हम अक्सर यह टिप्पणी सुनते हैं कि शिक्षण व्यवसाय एक व्यापार बन गया है, जहाँ मात्र धन एकत्रित किया जाता है और नैतिकता की उपेक्षा की जाती है। शिक्षक कक्षा में उपयुक्त ढंग से शिक्षण नहीं करते ताकि निजी कोचिंग के माध्यम से वे धन कमा सकें, शिक्षक - विद्यालय में कठिन परिश्रम नहीं करते क्योंकि उन्हें प्रबंधन द्वारा कम वेतन दिया जाता है, आदि। हम इन टिप्पणियों की अनदेखी या उपेक्षा नहीं कर सकते क्योंकि वे हमें हमारे वर्तमान का दर्पण दिखा रही हैं ।

कक्षाकक्ष का वातावरण पूर्ण रूप से शैक्षणिक बन गया है और नैतिक विकास पिछड़ गया है। शिक्षार्थियों को भी ऐसे शिक्षकों की आवश्यकता है जो विषयवस्तु का उपयुक्त ज्ञान दें और कुछ नहीं । विकास का भावात्मक क्षेत्र बताता है कि अंतिम संप्राप्ति चरित्र निर्माण है परंतु वह स्तर शायद ही कभी प्राप्त हो पाता है । कक्षाकक्ष शिक्षण एक मूल्यपरक क्रियाकलाप होना चाहिए । अर्थात् वे शिक्षा के मूलभूत अंग का निर्माण करते हैं। शिक्षक को निश्चित करना है कि यह किन विधियों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। कोई भी विषयवस्तु जो कक्षा में पढ़ाई जाए उसमें कुछ मूल्य आधारित दृष्टिकोण या व्याख्या भी होनी चाहिए। इसे शिक्षण के दौरान, शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच अंतः

क्रिया या सहपाठी चर्चा के दौरान सम्मिलित किया जा सकता है । यह शिक्षकों के लिए वास्तविक चुनौती है कि वे शिक्षण प्रक्रिया के दौरान नैतिक पक्ष को ध्यान में रखें। यह भिन्न प्रकार के हो सकते हैं, जैसे: नैतिक भाषा का उपयोग, सही और गलत कार्यों को आँकना, उपस्थिति में नियमितता और कक्षा में सम्बन्धों को सम्मान देना । इस प्रकार एक कक्षा में शिक्षण करते हुए एक शिक्षक की बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। इसे प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित प्रविधियों को अपनाया जा सकता है: इसे शिक्षक–प्रशिक्षणार्थियों की प्रशिक्षण अवधि में पढ़ाया जा सकता है। पाठ योजना निर्माण और इसके क्रियान्वयन के दौरान अध्यापक - प्रशिक्षक द्वारा इस तथ्य को सिखाया जाए।

- शिक्षण को प्रभावशाली बनाया जाए ताकि चरित्र विकास शिक्षार्थियों के व्यवहारगत प्रतिफलों में से एक हों ।
- अध्यापक-शिक्षकों और प्रशिक्षण संस्थानों का यह उत्तरदायित्व है कि वे प्रशिक्षणार्थियों को प्रभावी शिक्षकों में परिवर्तित कर सकें |
- मात्र शिक्षक ही शिक्षार्थियों का अपने विद्यालय के साथ जुड़ाव (लगाव) विकसित करने में सहायता कर सकते हैं जैसा शिक्षार्थियों का लगाव अपने घर के साथ होता है, अर्थात् विद्यालय के साथ लगाव की भावना का विकास किया जाए ।
- हम सब जानते हैं कि विद्यालय हमारे समाज या समुदाय का लघु रूप है। समाज के मानदंड, आचार-विचार और अपेक्षाओं को शिक्षण द्वारा शिक्षार्थियों में समाविष्ट किया जा सकता है।
- भाईचारा, सामुदायिक एकता और समुदाय सेवा की शक्ति की भावना, युवाओं में सकारात्मकता लाने में सहायक हो सकती है। इस प्रकार दुराचार और अपराधों को कम किया जा सकता है।
- जो शिक्षार्थी उपर्युक्त मूल्यों को अर्जित करते हैं, वे शैक्षिक रूप से भी श्रेष्ठता प्राप्त करते हैं।
- शिक्षक की नैतिक जिम्मेदारी है कि वह शिक्षार्थियों की योग्यता और अभिवृत्ति को ध्यान में रखें और उसके अनुसार उनका मार्गदर्शन करें।

- शिक्षक कक्षा में ऐसा वातावरण बनाने का प्रयास करें जो शिक्षार्थियों को उनकी क्षमता और योग्यता के अनुसार आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करें, कक्षा में शिक्षार्थियों का एक-दूसरे के प्रति सम्मान और विश्वास हो ।
- शिक्षण में ऐसी गतिविधियों का समावेश हो, जो कक्षा में सभी के बीच लगाव को मजबूत बनाए और सभी को अभिव्यक्ति के समान अवसर मिलें ।
- शिक्षक यह अवश्य पढ़ाएँ कि चरित्र निर्माण, शैक्षिक उपलब्धि से अधिक महत्वपूर्ण है। अच्छी नैतिकता सफल जीवन की पूर्वगामी है ।
- शिक्षक, शिक्षार्थियों की लिंग, आकर्षण, मद्यपान, तनाव, दुरूपयोग, आत्महत्या, रिश्वत आदि के प्रति जिज्ञासा की अनदेखी नहीं करें।
- शिक्षक "जीवन - कौशलों पर कार्यशालाओं का आयोजन करें ।
- शिक्षार्थी नैतिकता पर सीधे भाषण को पसंद नहीं करते। यह शिक्षक के ऊपर निर्भर करता है कि वह इन संदेशों को देने के लिए विभिन्न रोचक माध्यमों का उपयोग करें ।
- कक्षा - शिक्षण में ज्ञानात्मक, भावात्मक और मनोगत्यात्मक पक्ष सम्मिलित होते हैं । हमारे देश में हम मात्र ज्ञानात्मक प्राप्ति के बारे में ही चिंता करते हैं। एन.सी.ई.आर. टी. ने पाठ्यक्रम बनाने में अच्छा कदम उठाया है, जहाँ शिक्षण में विषयवस्तु के साथ मूल्यों का प्रसार भी सम्मिलित है।
- शिक्षण प्रक्रिया के दौरान शिक्षक को मूल्य आधारित क्रियाकलापों की पूरी निष्ठा से कराना चाहिए |

अधिगम (Learning)-

"अधिगम" शब्द का वास्तविक अर्थ समझने से पूर्व आइए हम कुछ परिभाषाओं का अध्ययन करते हैं जो प्रख्यात शिक्षाविदों द्वारा दी गई हैं।

"उपयुक्त प्रतिक्रिया का चयन और इसे उद्दीपन के साथ जोड़ना अधिगम है ।" (थोर्नडाइक)

"व्यवहार के परिणामस्वरूप व्यवहार में परिवर्तन अधिगम है ।" (गिलफर्ड)

"अधिगम व्यवहार का संगठन है ।" (गैरेट)

" अधिगम एक प्रगतिशील व्यवहार का अनुकूलन है।" (स्किनर)

जब आप उपर्युक्त सभी परिभाषाओं को देखते हैं तो सबमें एक चीज सामान्य है । वह है "व्यवहार में परिवर्तन" । एक शिक्षक कक्षा - शिक्षण में इसमें सहायता कर सकती / सकता है । शिक्षक को बच्चों में मेटाकौग्नीशन का एकीकरण करना चाहिए, शिक्षण का प्रारंभ शिक्षार्थियों के पूर्व ज्ञान - परीक्षण से होना चाहिए और तब नई विषयवस्तु को पुराने ज्ञान से जोड़कर शिक्षण करना चाहिए ।

इससे शिक्षार्थियों को पूर्व ज्ञान और नए ज्ञान को जोड़ने में सहायता मिलती है और इस प्रकार विषयवस्तु से पहचान बन जाती है। यह प्रक्रिया शिक्षार्थी में वांछित व्यवहार परिवर्तन लाती है। यह कक्षाकक्ष अनुभव शिक्षक द्वारा प्रभावी शिक्षण के बिना असंभव है।

अनुदेशन (Instruction)-

ध्यान आकर्षित करना - शिक्षार्थियों का ध्यान आकर्षित करने के लिए रूपरेखा को उचित प्रकार से प्रस्तुत करना ।

शिक्षार्थियों को उद्देश्य के प्रति सूचित करना - शिक्षण क्रियाकलाप प्रारंभ करने से पूर्व शिक्षार्थियों को विषयवस्तु शिक्षण के उद्देश्य बताए जाए ।

पूर्वज्ञान के पुनः स्मरण को उद्दीप्त करना - शिक्षार्थियों के पूर्व ज्ञान को स्पष्ट करने के बाद ही करना विषयवस्तु प्रस्तुत की जाए ताकि एक परिचित संबंध स्थापित हो सकें ।

उद्दीपक को प्रस्तुत करना - उद्दीपन में विविधता कक्षाकक्ष शिक्षण में कक्षा को एकाग्र और सक्रिय बनाती है। यह कक्षा को नीरस और निष्क्रय नहीं बनने देती।

अधिगम हेतु मार्गदर्शन करना - शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के दौरान शिक्षक को शिक्षार्थियों के किसी संदेह और शंका को दूर करने के लिए उनका मार्गदर्शन करना चाहिए ।

कार्य को आंकना - शिक्षार्थियों के क्रियाकलाप को उद्दीप्त करने और आगे बढ़ाने के लिए कक्षा को परस्पर संवादात्मक, बनाने का प्रयास अवश्य करें ।

प्रतिपुष्टि प्रदान करना - शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के दौरान, जब कभी आवश्यकता पड़े तो प्रतिपुष्टि प्रदान करनी चाहिए, ताकि सही समझ के मार्ग से न्यूनतम विचलन हो ।

निष्पादन का आकलन - कक्षाकक्ष के शिक्षण अनुभवों की सफलता का अनुमान लगाने के लिए मूल्यांकन आवश्यक है।

अवधारणा और स्थानांतरण - अधिगम के स्थानांतरण को सुनिश्चित किया जाना चाहिए। साथ ही स्थानांतरित विषयवस्तु लम्बे समय तक अवधारण भी होनी चाहिए ।

शिक्षणशास्त्र का शिक्षण, अधिगम तथा अनुदेश के साथ सम्बन्ध(Relationship of pedagogy with teaching, learning and instruction) :

जैसा कि पहले बताया गया है कि शिक्षणशास्त्र "शिक्षण की प्रक्रिया" है; हम कह सकते हैं कि यह एक ऐसा विषय है जो शिक्षा के सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों पक्षों से संबद्ध है। शिक्षार्थियों के संपूर्ण विकास हेतु कक्षाकक्ष में सर्वोत्तम शिक्षण कैसे हो सकता है, यह इसको विस्तार प्रदान करता है। जॉन डी.वी. के अनुसार - "पैडागोगी (शिक्षणशास्त्र) में पाठ्यक्रम और शिक्षण के बीच जैविक सम्बन्ध सम्मिलित है । यह अध्ययन आधारित सामाजिक रूप से न्यायसंगत, नैतिकता की दृष्टि से सुदृढ़ प्रथाओं की आवश्यकता पर बल देता है जो शिक्षक, शिक्षार्थी और अन्य लोगों के बीच अंतःक्रिया (वार्ता) का परिणाम होता है ।"

हर्बर्ट ने कहा कि "शिक्षणशास्त्र" एक शिक्षक द्वारा विशिष्ट निश्चित क्षमताओं का निश्चित लक्ष्य के साथ अनुमान है। उन्होंने कहा कि व्यक्तित्व विकास और अंतिम परिणाम के बीच एक सहसम्बन्ध है जो समाज और मनुष्य दोनों को पूरी तरह लाभान्वित करेगा। उन्होंने पाँच तत्व सुझाए हैं, जो निम्नलिखित हैं:

- तैयारी
- प्रस्तुतीकरण
- सम्बन्धित करना / जोड़ना
- सामान्यीकरण
- उन्हें आदर्श नागरिकों के रूप में विकसित करने के लिए उपयोग

जैसा कि पहले कहा गया है कि इस परिभाषा में शिक्षणशास्त्र में वे चरण सम्मिलित हैं जो उसी क्षण प्रारंभ हो जाते हैं, जैसे ही किसी विषय के शिक्षण का कार्य शुरु होता है । इसको निम्नलिखित रूप से प्रदर्शित किया जा सकता है:

i) शिक्षक का व्यक्तित्व, विषयवस्तु का ज्ञान, संप्रेषण कौशल, शैली, आचार और आचरण, आदि ।

ii) विभिन्न क्रियाकलापों का संगठनः शिक्षण के प्रारूप का नियोजन, विषयवस्तु की तार्किक व्यवस्था, सहायक सामग्री का उपयोग, आदि ।
।

iii) विषयवस्तु का प्रसारः चरण (ii) के अनुसार विषयवस्तु का शिक्षण अभिप्रेरणा और पुनर्बलन के उपयोग के साथ करना, परस्पर क्रिया को बढ़ाना, रूचि बनाए रखने के लिए उद्दीपक - विविधता प्रदान करना, सृजनात्मकता ।

iv) शिक्षार्थियों की उपलब्धियों का मूल्यांकनः मौखिक और लिखित परीक्षा द्वारा, व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन को देखने के लिए अवलोकन(observation) या कक्षा का सतत् मूल्यांकन ।

नोट: (प्याजे, ब्रूनर, वायगोस्की, आदि कुछ विद्वान हैं जिन्होंने शिक्षणशास्त्र के विज्ञान पर कार्य किया है) ।

अब शिक्षण, अधिगम, अनुदेश और शिक्षणशास्त्र के बीच सम्बन्ध पर और अधिक चर्चा करते हैं ।

"शिक्षण अधिगम का उद्दीपन, मार्गदर्शन, निदेशन और प्रोत्साहन है।" **बर्टन**

उपर्युक्त वाक्य में सही प्रकार से परिभाषित किया गया है कि शिक्षण ऐसा मार्ग बनाता है जो व्यक्ति को अधिगम के लिए दिशा प्रदान करता है ।

- अधिगम को प्रोत्साहित करने, बढ़ावा देने और अनुमोदित करने के लिए शिक्षण प्रक्रिया, शिक्षार्थी को स्वयं के पास ले जाती हैं।
- अधिगम कुछ सिद्धान्तों और नियमों के आधार पर संपादित होता है । (तत्परता, अभ्यास और प्रभाव, आदि के नियम) । यदि इन्हें शिक्षण विधियों में सम्मिलित किया जाए तो अधिगम अधिक प्रभावशाली बन जाता है ।
- शिक्षणशास्त्र शिक्षण पर केन्द्रित है जो भावी जीवन के लिए तैयार करता है; जैसे: सामाजिक कौशल, सांस्कृतिक मानदंड और नैतिक विश्वास ।
- अनुदेशन ज्ञान और कौशल अर्जित करने में सहायता के लिए शिक्षण हैं जो अधिक सुसंगठित, संसाधनपूर्ण, प्रभावी और चित्ताकर्षक हैं।
- पाउले फ्रियरे ने अपनी शिक्षण विधि को इस रूप में संदर्भित किया, "अनुदेश के साथ सहसम्बन्धित विशिष्ट शिक्षणशास्त्र (Critical Pedagogy) । "

अनुदेशक के अनुदेश सम्बन्धी स्वयं के दार्शनिक विश्वास, शिक्षार्थी की पृष्ठभूमि का ज्ञान और अनुभव, परिस्थिति और पर्यावरण, साथ ही शिक्षार्थी एवं शिक्षक द्वारा निर्धारित अधिगम लक्ष्यों द्वारा सुरक्षित और शासित होते हैं। उदाहरण के लिए सुकरात के विचारों का मानने वाला संप्रदाय ।

- रोबर्ट गेग्ने का मुख्य केन्द्र अनुदेशनात्मक सिद्धान्त था अर्थात् अनुदेश और अधिगम को व्यवस्थित रूप से कैसे जोडा जा सकता है।
- साधारणतया शिक्षण और अनुदेश को पर्यायवाची के रूप में उपयोग किया जाता है क्योंकि दोनों में बहुत कम परंतु महत्वपूर्ण अंतर है। शिक्षण की यात्रा,इसके कक्षाकक्ष में क्रियान्वित होने से बहुत पहले प्रारंभ हो जाती है जबकि अनुदेश मात्र शिक्षक के कक्षाकक्ष में प्रवेश करने पर ही प्रारंभ होता है ।

- अधिगम एक क्रमागत प्रक्रिया है, जिसका आरंभ शिक्षण के साथ होता है, अनुदेश द्वारा प्रगति होती है, शिक्षणशास्त्र का उपयोग होता है और इसका परिणाम शिक्षार्थी के व्यवहार में परिवर्तन होता है ।

प्रभावी शिक्षण शैली अपनाने के लिए सुझाव(Tips for adopting effective teaching style)

- शिक्षण शैली ऐसी हो कि शिक्षार्थी और शिक्षकों को पढ़ाई जाने वाली विषयवस्तु और उसके उद्देश्य स्पष्ट हों ।
- तीन सी (C) अर्थात् स्पष्टता (Clarity), संक्षिप्तता (Conciseance) और व्यापकता (comprehensiveness) सार है, जिन्हें किसी भी अच्छी शिक्षण शैली में शामिल करना चाहिए |

- कोई भी भ्रामक, अधूरी या अस्पष्ट विषयवस्तु शिक्षार्थियों द्वारा स्वीकार नहीं की जाती। इसलिए इन्हें टालना चाहिए ।
- एक शिक्षक में विषयवस्तु के ज्ञान का आत्मविश्वास आवश्यक है ।
- शिक्षक को सदैव किसी भी अप्रत्याशित स्थिति के लिए भी तैयार रहना चाहिए । यह उसकी शिक्षण शैली को बेहतर बनाता है ।
- पूर्वाग्रह विहीन और निष्पक्ष शिक्षक सदैव सम्मानित होते हैं। कक्षा क्रियाकलापों के दौरान सभी शिक्षार्थियों को समान अवसर प्रदान करने चाहिए ।

शिक्षण प्रतिमान (Teaching model) -

एक शिक्षक को अच्छी शिक्षण शैली की आवश्यकता होती है, परंतु इसके साथ शिक्षक को कक्षाकक्ष में प्रयोग होने वाले शिक्षण प्रतिमानों का ज्ञान भी अवश्य होना चाहिए । शिक्षण को एक दिशा दी जाती है और इसके लिए एक उपयुक्त ढाँचा या प्रारूप सहायक होता है, जिसे एक शिक्षण प्रतिमान कह सकते हैं। जैसे एक वास्तुकार इमारत बनाने के लिए एक कागज पर विस्तृत योजना बनाता है, इसी प्रकार एक शिक्षक को शिक्षार्थियों को पढ़ाने से पूर्व एक ढाँचे या विचार के साथ तैयार होना पड़ता है। पॉल. डी. रमन ने सही कहा है कि प्रतिमान विशिष्ट अनुदेशनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संरचित प्रतिपादित शिक्षण युक्तियाँ हैं । एक शिक्षण प्रतिमान, शिक्षक को सभी शिक्षार्थियों तक प्रभावी एवं सफलतापूर्वक पहुँच बनाने में सहायता करता है।

अच्छे शिक्षण प्रतिमान की विशेषताएँ-

- यह परस्पर संवादात्मक(interactive) होना चाहिए ।

- इसे शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों के बेहतर निष्पादन(Performance) में सहायता मिलनी चाहिए।
- इसमें दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक दोनों पृष्ठभूमि होनी चाहिए ।
- इसे पढ़ाई जाने वाली विषयवस्तु का संपूरक होना चाहिए ।
- यह कक्षाकक्ष में रोचक और प्रेरक वातावरण बनाने में सहायक होनी चाहिए।
- इसे शिक्षक और शिक्षार्थियों में सृजनात्मकता एवं अभिनव विचारों के विकास में सहायक होना चाहिए ।
- यह शिक्षार्थियों में वांछित व्यवहारगत परिवर्तन लाने में सहायक होना चाहिए।
- यह शिक्षार्थियों की सबलताओं और दुर्बलताओं को पहचानने और प्रतिपुष्टि द्वारा उनका आकलन करने में व्यवहार्य होना चाहिए ।

शिक्षण प्रतिमानों के आधारभूत बिन्दु(Basic points of teaching models) –

1. केन्द्र(Centre): यह किसी शिक्षण प्रतिमान की यह धुरी है, अर्थात् मुख्य उद्देश्य जिसके लिए इसका उपयोग होना है।

2. विन्यास(layout): शिक्षण प्रतिमान के सभी आयाम क्रमानुसार संगठित होते हैं ।

3. भावना का सिद्धान्तः शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच एक बंधन के निर्माण हेतु क्रिया-प्रतिक्रिया के सिद्धान्त को बनाए रखना ।

SACHIN ACADEMY

4. सामाजिक प्रणाली : शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच बंधन और परस्पर क्रिया उन्हें सामाजिक मानदंडों के अनुसार उनके व्यवहार परिवर्तन द्वारा समाज के लिए तैयार करने वाली होनी चाहिए ।

5. समर्थन प्रणालीः प्रतिमान को नियमित शिक्षण का संपूरक होना चाहिए जो शिक्षण की प्रभाविकता और अधिगम अनुभवों में वृद्धि करता है ।

6. उपयोग परिप्रेक्ष्य(usage perspective): शिक्षण प्रतिमान का उपयोग और प्रस्तुतीकरण पढ़ाए जाने वाली विषयवस्तु के अनुसार होना चाहिए ।

शिक्षण प्रतिमानों के प्रकार - शिक्षण प्रतिमान चार प्रकार के हैं:

1. सामाजिक अंतःक्रिया प्रतिमान (Social interaction model) -

समूह जाँच प्रतिमान(group investigation model) - यह प्रतिमान जॉन डी.वी. और हर्बर्ट थेलिम द्वारा सुझाया गया है। यह सामाजिक अंतःक्रिया का स्रोत है जिसमें समर्थक और विरोधी दोनों प्रकार के व्यक्तित्वों से बने हुए समूहों में कार्य करना शामिल है।

सामाजिक प्रेक्षा प्रतिमान(social observation model) - यह प्रतिमान बैंजामिन कौक्स और बायरौन द्वारा प्रस्तुत किया गया। यह सामाजिक और मानवीय मुद्दों से सम्बन्धित है जिन्हें आँकड़ों की सहायता से अनुसंधानित और प्रमाणित किया जाता है ।

प्रयोगशाला प्रतिमान(laboratory model) - यह प्रतिमान विज्ञान या जीव विज्ञान विषयों में किए जाने वाले प्रयोगों पर आधारित है।

2. व्यवहार - परिवर्तन प्रतिमान (Behavioral change model)

प्रत्यक्ष प्रतिमान(direct model) - यह लगभग शिक्षण की प्रत्यक्ष शैली के समान है, जिसकी चर्चा इस इकाई में पहले की गई है। शिक्षक कक्षा में मुख्य स्थान लेता है और कक्षा के माध्यम से शिक्षार्थियों का मार्गदर्शन करता है ।

क्रमादेशित(programmed) - यह शिक्षण की क्रमादेशित अनुदेश शैली है जैसे कि कम्प्यूटर सहायतिक अधिगम (**CAL**), जहाँ कम्प्यूटर और वैब तकनीक का उपयोग शिक्षण के लिए किया जाता है। इसे सर्वप्रथम बी. एफ. स्किनर ने बताया था ।

अभ्यास आधारित(practice based) - इसमें उपयुक्त विधियों, सहायक सामग्री, आदि द्वारा शिक्षण सम्मिलित है। बाद में प्रतिपुष्टि प्राप्त करने के बाद विषयवस्तु में प्रवीणता प्राप्त करने हेतु उपचारात्मक कक्षाओं की व्यवस्था करना ।

3. सूचना विकास प्रतिमान (Information development model)-

गेग्ने का सूचना प्रतिमान - यह संवेदी स्मृति से सम्बन्धित है । यह रटने और अभ्यास पर आधारित है। इसके कई पक्ष हैं: जैसे शिक्षार्थियों की तत्परता, प्रेरणा, अनुभूति, अधिगम का स्थानांतरण और ठहराव ।

ब्रूनर का प्रतिमान - इस तथ्य पर आधारित है कि पर्यावरण में सभी वस्तुओं और घटनाओं का एक-दूसरे के साथ सम्बन्ध है। हमारे चारों ओर बहुत-सी जटिलताएँ हैं जिनको छोटे भागों में वर्गीकृत करके समझा जा सकता है।

SACHIN ACADEMY

शूमैन का प्रतिमान - वैज्ञानिकों द्वारा प्रयुक्त रणनीतियों और मान्यताओं पर आधारित है। यह मूल रूप से वैज्ञानिक जाँच प्रतिमान है। समस्या का समाधान शिक्षक और शिक्षार्थियों दोनों के द्वारा वैज्ञानिक उपागम के उपयोग के माध्यम से किया जाता है ।

4. व्यक्तिगत आधारित प्रतिमान (Personal based model)-

अप्रत्यक्ष प्रतिमान को कार्ल रोजर्स द्वारा सुझाया गया। वह मानव सम्बन्धों की अवधारणा पर विश्वास रखते विश्वास रखते थे और यह सुझाया कि अनुदेशन इस प्रतिमान पर आधारित होने चाहिए, यह शिक्षण की चर्चा शैली के समान है, जिसके विषय में पहले बताया गया है।

आत्म जागरूकता - इसे फ्रिट्ज पौल्स और डब्ल्यू शूट्ज द्वारा बताया गया। यहाँ पर "स्व" के विकास पर बल दिया गया है। जहाँ शिक्षार्थी की जन्मजात शक्तियों और सृजनात्मकता की प्रगति हेतु स्वतंत्रता प्रदान की जाती है ।

सृजनात्मक / परियोजना प्रतिमान - इसे विलियम गोर्डन द्वारा प्रस्तुत किया गया। यह बताता है कि शिक्षार्थियों को ऐसी परियोजनाएँ सौंपी जा सकती हैं जिनमें वे स्वयं कार्य करके सीख सकते हैं। शिक्षक मात्र एक पर्यवेक्षक होता है । शिक्षार्थी या तो क्षेत्र में कार्य करने के लिए जाते हैं या किसी क्रियाकलाप पर परियोजना बनाते हैं; यह शिक्षण की प्रतिनिधि शैली के समान ही है ।

शिक्षण विधियाँ और उपागम

(Teaching methods and approaches)

विषयवस्तु के शिक्षण के दौरान शिक्षण विधियाँ और उपागम महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । शिक्षक को यह निश्चित करने में कि शिक्षार्थी के लिए कौन-सी विधि उपयुक्त होगी, पर्याप्त रूप से सक्षम होना चाहिए, शिक्षक को शिक्षण के सही उपागम द्वारा शिक्षा प्रदान करने के लिए मार्गदर्शित किया जाता है ।

"एक उपागम की व्याख्या " एक विशेष समस्या के साथ व्यवहार करने का व्यापक तरीका", इस रूप में की जा सकती है। यह एक सामान्य कार्य योजना है, जिसके आधार पर विभिन्न विधियाँ और प्रतिमान विकसित होते हैं । तथापि एक विधि, एक विशेष उपागम पर आधारित विचारों की व्यवस्थित और तार्किक(Logical) व्यवस्था है । यह विशेष उद्देश्यों को पूरा करने के लिए व्यवस्थित और स्पष्ट रूप से परिभाषित प्रक्रियात्मक उदाहरण है। अतः एक उपागम को प्रणेता कहा जा सकता है, जिस पर एक विधि की रूपरेखा बनती है"

अब हम कुछ महत्वपूर्ण और अधिकांशतः उपयोग की जाने वाली विधियों की संक्षिप्त चर्चा करते हैं ।

1. व्याख्यान विधि (Lecture method)- शिक्षक की इस विधि में मुख्य भूमिका होती है, जबकि शिक्षार्थियों की भूमिका बहुत कम या बिल्कुल नहीं होती । यह विधि उच्च कक्षाओं के लिए उपयुक्त है, जहाँ पाठ्यक्रम अधिक होता है । इस विधि का उपयोग कक्षाकक्षों में सामान्यतया और अधिकतर किया जाता है, परंतु भाषण की प्रवृत्ति है कि कई बार यह नीरस हो जाता है। अतः शिक्षिका को अपने भाषण की योजना कुछ रोचक उपकरणों के साथ बनानी चाहिए। जैसे, उदाहरण, घटना विवरण (एनक्डोट्स) आदि ।

2. प्रदर्शन विधि(Demonstration method) - गणित और विज्ञान विषयों के शिक्षण में उपयोग की जाने वाली यह सामान्य विधि है। श्रृव्य और दृश्य इंद्रियाँ शिक्षार्थी को अधिक सतर्क बनाती हैं। इस विधि की कमी यह है कि इसमें शिक्षार्थियों को प्रदर्शन से प्रयुक्त उपकरणों के प्रयोग को अनुमति नहीं होती । यह कई विद्यालयों में देखा जा सकता है, जहाँ कम्प्यूटर कक्षाएँ चल रही हों । शिक्षक कम्प्यूटर का उपयोग करके शिक्षार्थियों के सामने प्रदर्शन करते हैं, परंतु उन्हें इस सैट को छूने की अनुमति नहीं होती। इससे यह पूर्णतया स्पष्ट है कि इस विधि में विषयवस्तु का पूर्ण रूप से शिक्षार्थी तक स्थानांतरण में बाधा पड़ती है ।

3. व्याख्यान सह प्रदर्शन विधि - यह विधि उपर्युक्त चर्चित दोनों विधियों का मात्र संयोग है। बेहतर परिणामों के लिए शिक्षार्थी द्वारा दोनों के सर्वोत्तम का उपयोग किया जा सकता है। यह लगभग शिक्षार्थी केन्द्रित है । उदाहरण के लिए जब विज्ञान में विभिन्न प्रकार के लिवर की व्याख्या करनी हों तो शिक्षार्थी प्रदर्शन के लिए वास्तविक वस्तुएँ ला सकते हैं। जैसे: कैंची, चिम्टा, संडासी, आदि। इन वस्तुओं का प्रदर्शन करते हुए शिक्षिका उनकी व्याख्या भी कर सकती हैं।

4. ह्यूरिस्टिक / खोज विधि - प्रोफेसर एच.ई. आर्मस्ट्रांग के अनुसार, "विज्ञान सीखने का आत्मा "खोज" है । शिक्षार्थियों को तथ्यों और सिद्धान्तों की खोज स्वयं करनी चाहिए ।" यह परिभाषा स्पष्ट रूप से व्याख्या करती है कि यूरिस्टिक का अर्थ "अनुभव द्वारा खोजना" है । अनुभव प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को खोजने

का प्रयास करना पड़ता है। इस विधि द्वारा शिक्षार्थी समाधान तक पहुँचता है और इससे अधिगम होता है। यह विधि उच्च कक्षाओं के लिए बहुत अच्छी है क्योंकि यह एक शिक्षार्थी केन्द्रित उपागम है। शिक्षिका इस यात्रा द्वारा शिक्षार्थियों का मार्गदर्शन कर सकती है और उनका पर्यवेक्षण भी कर सकती है, ताकि शिक्षार्थी अपने मार्ग को न छोड़ें। यह शिक्षार्थी को स्वयं में आत्मविश्वास विकसित करने में सहायक होता है । उच्च स्तर पर चिंतन आरंभ करने के साथ ही वह अपनी जिज्ञासा द्वारा प्रेरित होता है, परंतु इस विधि में भी पुनः उसी सीमा का सामना करना पड़ता है । अर्थात् यह अकेले एक लाभदायक विधि नहीं हो सकती । उसे कुछ अन्य उपयुक्त विधियों के साथ जोड़कर शिक्षण संचालित करना चाहिए ।

5. समस्या समाधान विधि (Problem solving method) - "समस्या समाधान घटनाओं का एक क्रम है, जिसमें मनुष्य कुछ लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहता है ।" - गैग्ने ।

एक बच्चा तब तक किसी समस्या का समाधान नहीं कर सकता, जब तक कि उसमें समस्या में परिचित होने की भावना न हो, अतः समस्या ऐसी होनी चाहिए कि वह शिक्षार्थी को इसके समाधान हेतु प्रयास करने के लिए प्रेरित और आकर्षित करे । समाधानकर्त्ता के लिए आवश्यक है कि वह समस्या की प्रकृति और वह उसके लिए व्यावहारिक है या नहीं, इसकी जानकारी रखे, यदि उद्देश्य स्पष्ट हैं तो शिक्षार्थी समाधान ढूँढ़ने के लिए स्वयं को पूर्ण रूप से संलग्न करता है ।

आसूबेल के अनुसार, “समस्या समाधान में अवधारणा निर्माण और खोज द्वारा अधिगम शामिल है ।" खोज अधिगम विधि में पालन किए जाने वाले चरणों की शिक्षक द्वारा रूपरेखा बनाई जानी चाहिए। मुख्य चरण हैं: समस्या, इसे क्यों लिया

गया है, परिकल्पना निर्माण(hypothesis generation), आँकड़ों का संकलन, विश्लेषण, व्याख्या और निष्कर्ष ।

इस विधि का उपयोग मुख्य रूप से गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, आदि में किया जाता है। इस विधि के दौरान कभी-कभी अधिगम प्रक्रिया धीमी हो जाती है । यह इसलिए होता है, क्योंकि इस प्रक्रिया में कुछ शिक्षार्थी मंद होते हैं और उनकी समस्या का शिक्षकों द्वारा समाधान किया जाता है ।

6. परियोजना विधि (Project method)- यह दो प्रकार की हो सकती है पहला, जब एक स्थिर या कार्यकारी प्रतिमान बनाया जाए, जैसे: विज्ञान और सामाजिक विज्ञान में । दूसरा, जाँच सम्बन्धी परियोजना जहाँ कुछ शोध या सर्वेक्षण किया जाता है और प्राप्तियों के आधार पर एक प्रतिवेदन तैयार किया जाता है । यह विधि प्रयोग विधि या प्रयोगशाला विधि के अंतर्गत भी आती है। इस विधि को किलपैट्रिक द्वारा प्रतिपादित किया गया। "एक परियोजना सामाजिक परिवेश में संचालित पूर्णतया उद्देश्यपूर्ण क्रियाकलाप है ।" यह विधि शिक्षार्थी के रचनात्मक और जाँच सम्बन्धी पक्ष को प्रकाशित करने में सहायक है । इसमें तार्किक चिंतन की बहुत आवश्यकता होती है।

7. आगमन और निगमन विधि (Inductive and deductive method)- आगमन विधि में विशिष्ट से सामान्य की ओर और निगमन विधि में सामान्य से विशिष्ट की ओर बढ़ने की क्रिया होती है । आगमन विधि में विशिष्ट तथ्य और उदाहरण

प्रस्तुत किए जाते हैं और शिक्षार्थी सामान्यीकरण तक पहुँचती / पहुँचता है तथा इसका उल्टा निगमन विधि में होता है । इसे एक उदाहरण द्वारा समझते हैं।

प्रतिदिन बिजली की खपत बढ़ रही है। बिजली की कीमत बढ़ चुकी है। पैट्रोल और डीजल की कीमतें बढ़ रही हैं। कोयले के भंडार कम हो रहे हैं। वनों का दिन प्रतिदिन ह्रास हो रहा है।" इन सभी कथनों का सामान्यीकरण एक वाक्य में इस प्रकार कर सकते हैं। "जनसंख्या वृद्धि के साथ प्राकृतिक ऊर्जा संसाधन कम हो रहे हैं ।"

आगमन ।

एक अन्य उदाहरण - "प्राकृतिक ऊर्जा संसाधनों का बचाव" ।

प्रदूषण बढ़ रहा है, इसलिए प्राकृतिक संसाधनों की खपत भी बढ़ रही है। वनों को सुरक्षित रखना चाहिए और वृहद वृक्षारोपण होना चाहिए। खनन का काम नियंत्रित होना चाहिए। देश को अब कोयले के स्थान पर नाभिकीय ऊर्जा द्वारा विद्युत उत्पादन का कार्य करने के आगे बढ़ना चाहिए। लोगों को सार्वजनिक परिवहन या कार पूलिंग को अपनाना चाहिए, घर में भी बिजली की बर्बादी अनावश्यक रूप से नहीं होनी चाहिए ।

निगमन ।

8. <u>विश्लेषण और संश्लेषण विधि</u> (Analysis and synthesis method)-

विश्लेषण का अर्थ है एक बड़ी या जटिल समस्या या अवधारणा को लेना और बेहतर तरीके से समझने के लिए इसे छोटी इकाइयों से तोड़कर समझने का

प्रयास करना, इस विधि में हम ज्ञात से अज्ञात की ओर या निष्कर्ष से परिकल्पना की ओर जाते हैं। इसे एक उदाहरण द्वारा समझते हैं ।

"आमाशय(stomach) एक अंग है जो विभिन्न प्रकार के ऊतकों से बना है । अब विभिन्न ऊतकों का विश्लेषण करना है। अर्थात् विभिन्न प्रकार के ऊतक जैसे एपीथीलियम, स्कैवमौस, कौलमनर, कनैक्टिव ब्लड टिश्यूस (रक्त ऊतक), आदि का विश्लेषण किया जाता है ।"

संश्लेषण विधि, विश्लेषण विधि की ठीक उल्टी है । यह ज्ञात से अज्ञात की ओर या परिकल्पना से निष्कर्ष की ओर बढ़ती है । यह उसी प्रकार हैं जैसे कि आपको दो हाथ, दो पैर, एक सिर, एक धड़ दिए गए हैं और इन्हें जोड़कर मानव शरीर बनाने के लिए कहा गया । परंतु मानव शरीर के विभिन्न अंगों को एक साथ जोड़कर बनाना, मानव-हाथ, पैर, सिर आदि की संरचना के बारे में आपके ज्ञान पर आधारित होगा। हम कह सकते हैं कि विश्लेषण खोज पर बल देता है और संश्लेषण स्मृति पर आधारित होता है ।

शिक्षण के चरण

(Stages of teaching)

शिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जो विभिन्न अवस्थाओं में संपन्न होती है। फिलिप जैकसन ने शिक्षण - संचालन को तीन भागों में बाँटा है और ये हैं: पूर्व-क्रियात्मक, अंतःक्रियात्मक और पश्च क्रियात्मक चरण । इनकी हम अलग-अलग चर्चा करते हैं ताकि हम समझ सकें कि शिक्षण प्रक्रिया को पूर्ण करने में उनकी क्या भूमिका हैं:

1. पूर्व क्रियात्मक चरण (Pre operational stage)- हम कह सकते हैं कि यह वास्तविक शिक्षण आरंभ होने से पूर्व की तैयारी है। कक्षाकक्ष में प्रवेश करने से पूर्व शिक्षक को अपने उपकरण / सामग्री के साथ अच्छी तरह से तैयार होना चाहिए । शिक्षक को अपने नियोजन और उसे शिक्षण प्रक्रिया में कैसे सम्मिलित किया जाए, के साथ अवश्य तैयार होना चाहिए। इस चरण में कक्षा में कार्य प्रारंभ करने से पूर्व, पूर्ण प्रमाणित तैयारी और सारिणीकरण सम्मिलित है ।

इस अवस्था के चरण -

- शिक्षण लक्ष्य और उद्देश्यों को निर्धारणः शिक्षण प्रारंभ करने से पूर्व शिक्षक को प्रक्रिया के अंत में प्राप्त किए जाने वाले लक्ष्यों की जानकारी होनी चाहिए । लक्ष्यों का निर्धारण शिक्षार्थियों के स्तर (रूचि, क्षमता, अभिवृत्ति, मनोविज्ञान, पृष्ठभूमि, आदि), विषयवस्तु और शिक्षक, शिक्षार्थी और समाज की अपेक्षाओं को ध्यान में रखकर किया जाता है ।

विषयवस्तु की क्रमबद्ध व्यवस्थाः लक्ष्य निर्धारित करने के बाद हमें दूसरे स्तर विषयवस्तु लक्ष्य की ओर बढ़ना होता है । हमें विषयवस्तु का गहन विश्लेषण करना होता है। जैसे कि हम शिक्षार्थियों के स्तर को जानते हैं, उसी के अनुसार विषयवस्तु का विश्लेषण करना चाहिए । इस प्रक्रिया के दौरान विषयवस्तु को छोटे, सरल टुकड़ों में विभाजित करना चाहिए जिन्हें शिक्षार्थी समझ सकें । परंतु इन टुकड़ों को क्रमबद्ध तरीके से व्यवस्थित करना चाहिए और उनके बीच जुड़ाव होना चाहिए । यह शिक्षिका को कक्षाकक्ष में तार्किक ढंग से आगे बढ़ने के लिए मार्गदर्शन देगा। जब लक्ष्य स्पष्ट हो जाए और विषयवस्तु का संगठन हो जाए, तब शिक्षिका को शिक्षण के संचालन के लिए रणनीतियाँ तैयार करनी होंगी और इसे अधिक रोचक और रचनात्मक बनाना होगा। कोशिश करनी चाहिए कि शिक्षार्थियों

के अधिगम - अनुभव यथासंभव प्रभावशाली बनाए जाए । इन रणनीतियों में सम्मिलित हो सकते हैं: शिक्षण शैली, शिक्षण प्रतिमान, अधिगम स्थानान्तरण के लिए विधियों और तकनीकें । शिक्षिका को यह निश्चित करना है कि कौन-सी विधि का उपयोग किया जाए कि जिसके द्वारा एक विशेष विषयवस्तु का शिक्षण प्रभावी ढंग से किया जा सकता है ।

2. अंतःक्रियात्मक चरण (Interaction stage)- जैकसन के अनुसार "अंतःक्रियात्मक अवस्था में शिक्षिका शिक्षार्थियों को विभिन्न प्रकार से मौखिक प्रोत्साहन प्रदान करती / करता है, व्याख्या करती है, प्रश्न पूछती है, उनके प्रत्युत्तर(response) सुनती है, उनको मार्गदर्शन प्रदान करती है; आदि । इस अवस्था में शिक्षिका उपयुक्त उपकरण के साथ कक्षाकक्ष में होती है। अब वास्तविक शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का परिचय दिया जाता है । अंतःक्रियात्मक प्रक्रिया शिक्षक और शिक्षार्थियों के बीच संपन्न होती हैं, जहाँ शिक्षिका नई विषयवस्तु को शिक्षार्थियों के पूर्व-ज्ञान से जोड़कर प्रस्तुत करती है। साथ ही शिक्षार्थी कक्षाकक्ष शिक्षण के अनुभवों को ग्रहण करने का प्रयास भी करते हैं। इस प्रक्रिया में कई बार उलट प्रश्न पूछना हो सकता है और विषयवस्तु की पुनरावृत्ति हेतु शिक्षार्थियों द्वारा निवेदन किया जा सकता है। इस स्तर पर शिक्षक का क्रियाकलाप निर्धारित उद्देश्यों और कक्षा में आने से पूर्व किए गए नियोजन पर आधारित होता है। इस चरण में निष्पादित किए जाने वाले मुख्य क्रियाकलाप हैं:

- सर्वप्रथम शिक्षक को कक्षा का एक दृष्टि से तीव्र अवलोकन करना चाहिए ।
- शिक्षार्थियों के साथ एक सम्बन्ध बनाने का प्रयास करना चाहिए ताकि वे एक पहचान की भावना का अनुभव करें ।

- कक्षा के स्तर, उनकी रूचि, अभिवृत्ति और योग्यता का तीव्र अवलोकन करना चाहिए। इसके लिए पूर्व ज्ञान आधारित प्रश्न पूछने चाहिए ।
- उनको आँकने के बाद शिक्षक को शिक्षार्थियों के सम्मुख विषयवस्तु का प्रस्तुतीकरण उपयुक्त विधि और तकनीकों के उपयोग द्वारा करना चाहिए ।
- संप्रेषण द्विमार्गीय(two way communication) प्रक्रिया होनी चाहिए ताकि यह परस्पर संवादात्मक कक्षा बन सके। यह शिक्षक को यह समझने में सहायक होगा कि शिक्षार्थी उसके द्वारा प्रस्तुत बिंदुओं को समझ रहे हैं या नहीं | जैसी चर्चा की गई है, प्रस्तुतीकरण द्विमार्गीय संप्रेषण है। इसलिए जब शिक्षार्थी की ओर से अच्छा उत्तर मिलता है तो शिक्षक उचित प्रोत्साहन प्रदान करें। यह पूरी कक्षा को उस प्रत्युत्तर का विश्लेषण करने के लिए अधिक प्रयास हेतु प्रेरित करेगा ।
- इसके अतिरिक्त यह शिक्षण उद्दीपन विविधता, श्रव्य दृश्य सामग्री, क्रियाकलापों आदि द्वारा सहवर्ती होना चाहिए ।

3. <u>पश्च क्रियात्मक चरण</u> (Post action stage)- इस चरण को शिक्षण प्रक्रिया का समापन कहा जा सकता है, या दूसरे शब्दों में यह उसी विषयवस्तु के लिए नई, बेहतर और संशोधित शिक्षण प्रक्रिया का आरंभ है। जैसे ही शिक्षण प्रक्रिया समाप्त की ओर होती है, इसका आरंभ हो जाता है । यह चरण शिक्षक के लिए एक परीक्षा है, क्योंकि यहाँ पर इस बात का मूल्यांकन प्रारंभ हो जाता है कि शिक्षक ने उद्देश्यों को प्राप्त करने और शिक्षार्थियों में वांछित परिवर्तन लाने में कितनी सफलता प्राप्त की है। साथ ही शिक्षिका यह निश्चित करने में सक्षम हो जाती है कि कक्षाकक्ष शिक्षण में कौन-सी तकनीक, उपकरण और रणनीति लाभदायक है।

शिक्षण सूत्र (Maxims of teaching)- सूत्र मात्र सरल दिशा - निर्देश या सिद्धान्त हैं जो शिक्षकों को शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के दौरान निर्णय लेने और उसके अनुसार कार्य करने में सहायक होते हैं । रिचर्ड द्वारा दी गई परिभाषा के अनुसार, "शिक्षक के सूत्र सांस्कृतिक कारकों, विश्वास प्रणालियों, अनुभव, प्रशिक्षण और कौन-से सूत्र को शिक्षक प्राथमिकता देते हैं, को प्रदर्शित करते हैं ।" ये शिक्षक के शिक्षण कार्य को किस प्रकार प्रभावित करते हैं, यह शिक्षक विकास का महत्वपूर्ण लक्ष्य है। आइए, देखें इन सूत्रों की क्या विशेषताएँ होनी चाहिए:

- ये शिक्षकों को अभिप्रेरित करने वाले हों
- शिक्षकों को शिक्षण के दौरान निर्णय लेने में सहायक हों ।
- शिक्षण को रोचक, रचनात्मक और उद्देश्यपूर्ण बनाएँ ।
- शिक्षण को सरल कार्य बनाएँ ।
- शिक्षण को संगठित और प्रभावशाली बनाएँ ।

शिक्षण सूत्रों की विषयवस्तु -

कक्षाकक्ष में शिक्षक यह निश्चित कर सकती / सकता है कि कौन-से क्रियाकलाप शिक्षार्थियों को विषयवस्तु ग्रहण करने में सहायक होंगे। इसलिए, शिक्षण सूत्रों में निम्नलिखित विषयवस्तु होनी आवश्यक है । इन्हें होना चाहिए:

क) सरल से जटिल की ओर: यह बाल मनोविज्ञान है कि बच्चा विषयवस्तु को सरल रूप में चाहता है । इसलिए शिक्षक को सरल तथ्यों से आरंभ करके शिक्षार्थियों को कुछ कठिन तथ्यों की ओर ले जाना चाहिए |

ख) ज्ञात से अज्ञात की ओर: जब शिक्षण का प्रारंभ पूर्व - ज्ञान से नए प्रदान किए जाने वाले ज्ञान की ओर होता है तो शिक्षार्थी ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ने में कठिनाई अनुभव नहीं करता ।

ग) अमूर्त से मूर्त की ओर(from abstract to concrete): यह मनोविज्ञान के सिद्धान्त पर आधारित है । जब शिक्षार्थी किसी वस्तु या घटना की अनुभूति इसके वास्तविक या भौतिक रूप में करता है तो वह उससे सरलता से जुड़ जाता है। उसके बाद शिक्षार्थी को अमूर्त तथ्यों की ओर ले जाना चाहिए ।

घ) प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष की ओर(from direct to indirect): जो भी विषयवस्तु का शिक्षण शिक्षार्थी के लिए करना हो, उसे प्रत्यक्ष रूप से शिक्षार्थी के सम्मुख सीधे प्रस्तुत नहीं किया जा सकता । इसके लिए विषयवस्तु को उन तथ्यों से जोड़ना चाहिए जिन्हें वह पहले से जानता हो । उदाहरण के लिए "अम्ल" के बारे में बताने के बाद ही शिक्षार्थी से खट्टेपन, खट्टे फलों, खट्टेपन का कारण, सिट्रिक अम्ल के बारे में पूछना चाहिए | इसके बाद उन्हें खनिज अम्लों के बारे में शिक्षित करना चाहिए |

ङ) विशिष्ट से सामान्य की ओर: शिक्षार्थी के सम्मुख विशिष्ट तथ्य प्रस्तुत करने चाहिए और सामान्य कथन तक पहुँचने के लिए इन्हें संगठित तरीके से संयोजित करना चाहिए ।

च) विश्लेषण से संश्लेषण की ओर(From analysis to synthesis): यह मनोविज्ञान के सहसम्बन्धित सिद्धान्त पर आधारित है। जब कभी हम नए सिद्धान्त से परिचित होते हैं तो इसे विश्लेषित करने का प्रयास करते हैं और फिर

उन्हें एक में जोड़ने का । उदाहरण के लिए जीव विज्ञान में हम पहले कोशिका के बारे में सीखते हैं; फिर ऊतक और उसके बाद अंगों के बारे में, अंत में हम पूरे शरीर के बारे में अध्ययन करते हैं जो विभिन्न अंगों द्वारा संरचित है।

छ) अनुभव सिद्ध से तर्कसंगत की ओर: शिक्षार्थी द्वारा प्राप्त प्राथमिक ज्ञान वास्तविक और व्यावहारिक होता है जो वह अपने स्वयं के अनुभवों से प्राप्त करता है। उसके बाद वह अधिक संतुलित और संवेदनशील विषयवस्तु की ओर बढ़ता है ।

ज) मनोवैज्ञानिक से तार्किक की ओर: इसे शिक्षण की पूर्व क्रियात्मक अवस्था के दौरान देखा जाता है, जहाँ विषयवस्तु को इस प्रकार संगठित किया जाता है कि प्राथमिकता शिक्षार्थी का मनोविज्ञान (जैसे रूचि, योग्यता, आदि) हो । उसके बाद वास्तविक शिक्षण सरल से जटिल की ओर तार्किक तरीके से संचालित होता है ।

झ) पूर्ण से अंश की ओर: जैसा कि अंतः दृष्टि का सिद्धान्त बताता है कि किसी भी वस्तु या घटना को पूर्ण के रूप में देखना चाहिए और बाद में इसे टुकड़ों में समझा जाता है। एक शिक्षार्थी किसी विषयवस्तु को पूर्ण रूप में प्रस्तुत करती / करता है, फिर इसे छोटी-छोटी इकाइयों में तोड़ा जाता है और तब शिक्षार्थियों को समझाया जाता है।

ण) अनिश्चित से निश्चित की ओर: कक्षा में शिक्षण की विषयवस्तु शिक्षण के लिए निश्चित होनी चाहिए परंतु शिक्षार्थियों के लिए नहीं । इसलिए शिक्षण शैली ऐसी हो कि शिक्षार्थी प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने में सक्षम हो जो तभी संभव है जब वह इससे परिचित हों ।

शिक्षण के स्तर(level of teaching) -

जब कक्षा में शिक्षण कार्य किया जाता है, तो इसे शिक्षण के स्तरों के अनुसार उपयुक्त रूप से क्रमबद्ध किया जाना चाहिए । इसके द्वारा ज्ञानात्मक, मनोप्रेरणात्मक(psychomotor) और भावात्मक विकास हो सकता ।

ब्लूम ने ज्ञानात्मक विकास के आधार पर स्तरों के वर्गीकरण का वर्णन किया है।

होकेनसन और हूपर के अनुसार, शिक्षण के पाँच स्तर हैं । प्रत्येक स्तर पहले की गतिविधि पर आधारित है।

स्तर I: प्राप्ति(Receipt)- इस स्तर पर शिक्षार्थियों को सूचना प्राप्त होती है। शिक्षक को उत्तर और प्रत्युत्तर देने होते हैं । कई शिक्षक इस स्तर पर ही सभी क्रियाकलापों को संचालित करने का प्रयास करते हैं। परंतु इससे अच्छे परिणाम प्राप्त नहीं होते। इस स्तर पर मात्र शिक्षार्थियों को शारीरिक और मानसिक रूप से तत्पर करना होता है। हम कह सकते हैं कि इस स्तर पर शिक्षक से शिक्षार्थी की ओर एकतरफा संप्रेषण होता है ।

स्तर II: अनुप्रयोग(Application)- यहाँ पर शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच पारस्परिक - संवाद प्रारंभ हो जाता है । यह प्रश्न, चर्चा, जाँच, आदि के रूप में हो सकता है। इस अवस्था में कक्षा अधिक रोचक और रचनात्मक बन जाती है। अवधारणाओं को समझने और विश्लेषित करने का स्तर भी बढ़ जाता है ।

स्तर III: विस्तार(Extension)- जैसा कि विस्तार शब्द का अर्थ बताता है, इस स्तर पर पहले सीखी गई विषयवस्तु को एक कदम आगे बढ़ाया जाता है और प्राप्त ज्ञान का उपयोग नई स्थितियों में किया जाता है ।

स्तर IV: रचना(Creation)- अब ज्ञान का स्तर उच्च हो जाता है, और शिक्षार्थी समस्या का समाधान अपने तरीकों से करने में सक्षम हो जाता है । वह बहुत-सी

जटिल समस्याओं का सामना करने में समर्थ होता है और समाधान करने से बहुत से मार्ग ढूँढ़ने का प्रयास करता है। शिक्षक शिक्षार्थी को मार्गदर्शन और पर्यवेक्षण में सहायता करते हैं ।

स्तर V: चुनौती(Challenge)- इस स्तर पर शिक्षार्थी स्वयं की सीमाओं को चुनौती देने में समर्थ हो जाता है। वह चुनौती के प्रति खोजपूर्ण दृष्टिकोण अपनाने का साहस जुटा लेता है ।

एक जटिल क्रियाकलाप के रूप में शिक्षण -

शिक्षण एक चुनौतीपूर्ण कार्य है, जिसमें बहुत से आयाम सम्मिलित है, जैसे -

- अच्छी बुद्धिलब्धि (आई क्यू) के साथ बुद्धिमान होना ।
- शिक्षार्थियों की खोज की संतुष्टि हेतु पर्याप्त ज्ञान होना ।
- स्पष्ट उद्देश्यों और लक्ष्यों के साथ तार्किक तैयारी और प्रस्तुतीकरण ।
- युक्तिपूर्णता और संवेदनाओं का प्रदर्शन और शिक्षार्थियों उनमें इनका विकास ।
- शारीरिक और मानसिक शक्ति, तनाव और आलोचना का सामना करने की योग्यता।
- भय और संदेह के बिना विचारों और अनुमानों को अभिव्यक्त करना ।
- कक्षा के साथ सम्बन्ध बनाने की गर्मजोशी और परानुभूति ।
- जो शिक्षार्थी समस्या का सामना करते हैं उनके प्रति संवेदनशीलता ।
- अपने कार्य के प्रति उत्कट(keen) और तीव्र अर्थात् उत्साही और जोशीला ।
- नई खोजों के साथ स्वयं को साथ-साथ उन्नत और नवीनतम बनाना ।

SACHIN ACADEMY

- अंशकालीन पाठ्यक्रमों और कार्यशालाओं द्वारा सतत् रूप से स्वयं को प्रशिक्षित करना ।
- स्वयं तथा शिक्षार्थियों का मूल्यांकन करना ।
- पाठ्यचर्या और विषयवस्तु में स्वयं को नवीनतम बनाना ।
- कक्षा मे और कक्षा के बाहर नवाचारी रणनीतियों का उपयोग ।
- शिक्षण में अतिरिक्त अन्य विविध कार्य करना ।
- प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से समाज की सेवा आदि और बहुत कुछ अधिक ।

सभी क्रियाकलापों का निष्पादन विद्यालय के स्तर (राजकीय, व्यक्तिगत, निजी, कौनवेंट, ग्रामीण, शहरी, आदि) और बच्चों के स्तर (उनकी रूचि, योग्यता, दृष्टिकोण, पृष्ठभूमि आदि) को ध्यान में रखकर किया जाना है । साधारणतया जो शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, वे कुछ हद तक शिक्षण कार्य के लिए तैयार होते हैं । शिक्षण के दौरान उन्हें उपर्युक्त चर्चित पक्षों में से कुछ पक्षों में प्रशिक्षण दिया जाता है। परंतु कई बार वास्तविक जीवन अनुभव नए शिक्षक के लिए पथप्रदर्शक का कार्य करते हैं। कार्य अवधि के दौरान शिक्षक को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। कुछ धीरे-धीरे सीख लेते हैं और कुछ कठिन मानकर व्यवसाय छोड़ देते हैं । इसलिए इस प्रकार शिक्षकों को इसी के अनुसार जागरूक और प्रशिक्षित किया जाना चाहिए ताकि वे शिक्षण व्यवसाय की व्यावहारिकता का सामना कर सकें। साथ ही शिक्षक को शिक्षार्थियों के समग्र विकास के लिए भी प्रयास करना है। यही नहीं शिक्षार्थी और शिक्षक दोनों के निष्पादन का मूल्यांकन होता है, जो उनकी प्रगति को स्पष्ट करता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षण एक बहुमुखी क्रियाकलाप है । मूल्यांकन के बाद प्रतिपुष्टि(Feedback) की जाती है ताकि शिक्षण

को एक बेहतर क्रियाकलाप में परिवर्तित किया जा सके। कमजोर शिक्षार्थियों का समायोजन इस प्रकार करना चाहिए कि वे स्वयं को हीन न समझें। शिक्षक स्वयं एक शिक्षार्थी है जो प्रतिदिन नई स्थितियों में अनुकूलन करती / करता है । विविध भूमिकाओं के साथ शिक्षण निश्चित रूप से एक जटिल क्रियाकलाप है ।

एक व्यवसाय के रूप में शिक्षण -

अन्य व्यवसायों की तरह शिक्षण को भी समान आदर मिलना चाहिए | इंजीनियर, डॉक्टर, वास्तुकार, अधिकारी, आदि अच्छा वेतन पाते हैं जो निजी शिक्षकों को नहीं मिलता । विद्यालयों में वेतन और कार्य करने की स्थितियों में सुधार की आवश्यकता है। इस व्यवसाय को अपना सम्मानित स्थान तब मिलेगा जब हम सब एक व्यवसाय के रूप में इसके उत्थान हेतु कार्य करेंगे। शिक्षण को समाज में इसके अच्छी तरह योग्य स्थान मिलने की आवश्यकता है । शिक्षकों को व्यावसायिक निर्णयों, सम्बन्धित आवश्यकताओं के निदान, संस्थानिक कार्यक्रमों और मूल्यांकन नीतियों में भाग लेने के लिए भूमिका दी जानी चाहिए ।

विद्यालय संगठनों को व्यावसायिक सम्बन्ध अपनाने चाहिए और शिक्षकों का चयन योग्यता मानदंडों के आधार पर होना चाहिए तथा धन की बचत हेतु अनुभवहीन शिक्षकों की नियुक्ति से बचना चाहिए | क्योंकि अनुभवहीन शिक्षक, शिक्षक न होने की तुलना में अधिक हानि पहुँचाते हैं; इसलिए एक मानक बनाना आवश्यक है। दूसरी ओर शिक्षकों को भी व्यावसायिकता दर्शानी चाहिए और सच्चाई एवं समर्पण के साथ कार्य करना चाहिए ।

संप्रेषण का अर्थ और सिद्धांत

(MEANING AND PRINCIPLES OF COMMUNICATION)

संप्रेषण एक सामाजिक प्रक्रिया है । इस प्रक्रिया में अकेला व्यक्ति संप्रेषण करने में असमर्थ होता है। उसे एक श्रोता की जरूरत होती है। अगर एक व्यक्ति कोई बात करता है तो दूसरा व्यक्ति उसे सुनता है । अतः व्यक्ति सामाजिक होने के साथ-साथ संप्रेषणशील भी होता है। वस्तुतः संप्रेषण का अर्थ है किसी एक संदेश को दो व्यक्तियों या समूहों को एक समान या उसी प्रकार दूसरे के पास भेजना । एक स्थान से दूसरे स्थान में संदेश या जानकारी भेजना भी संप्रेषण है। इसमें वक्ता, श्रोता और संदेश के अतिरिक्ति स्रोत, माध्यम और लक्ष्य भी होता है । वक्ता या संप्रेषणकर्ता अपना संदेश स्व-अभिव्यक्ति से, पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों, टेलीफोन, मोबाइल, टी.वी., रेडियो यंत्र आदि विविध पद्धतियों से प्रेषित करता है। संप्रेषण परस्पर संबंधों का निर्माण करता है; गलतफहमी दूर करता है, तनाव कम करता है और आत्मविश्वास पैदा करता है। यदि किसी सूचना का अध्ययन तकनीकी प्रक्रिया से किया जाता है तो वह संप्रेषण सिद्धांत होगा जो सूचना सिद्धांत का एक क्षेत्र है। इससे लोग विचार-विमर्श करते हुए अपने संदेश या मंतव्य का सृजन करते हैं और उसके अर्थों की व्यवस्था बनाए रखते हैं। संप्रेषण सिद्धांत के अनुसार भाषिक संप्रेषण में कोडीकरण और विकोडीकरण की प्रक्रिया निहित रहती है । एक भाषा में वक्ता या लेखक अपने संदेश को भाषाबद्ध रूप देता है अर्थात् कोडीकरण करता है, इसका संचरण वह मुखोच्चार और लेखन के माध्यम से करता है जिसे क्रमशः मौखिक और लिखित माध्यम कहा जाता है। श्रोता वक्ता द्वारा उच्चरित ध्वनियों का अभिज्ञान करता है अर्थात् ध्वनियों का श्रवण कर या देखकर पहचानता है। इसके बाद वह उनका विकोडीकरण(decoding) कर अर्थ ग्रहण करता है । इस

प्रक्रिया में भाषा का संप्रेषण होता है, किंतु यह आवश्यक है कि कोडीकरण(Coding) और विकोडीकरण के लिए कोड एक समान होना अपेक्षित है।

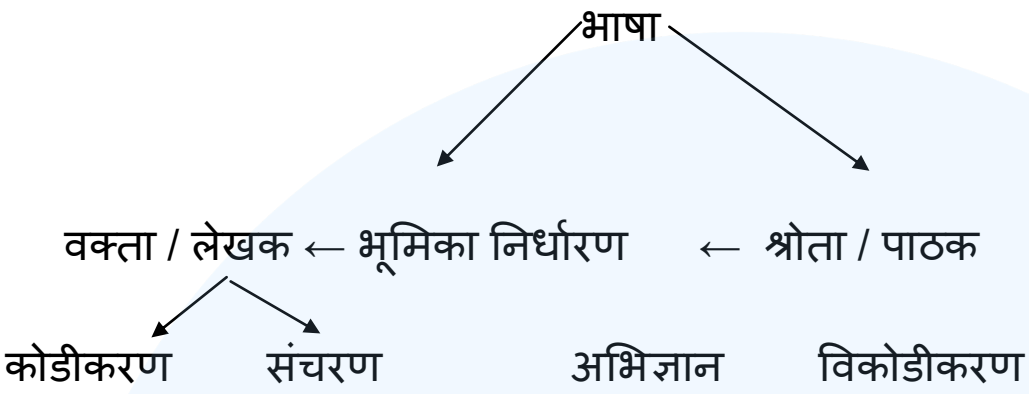

माध्यम

1. उच्चारण (मुख) मौखिक श्रोत्रिक श्रवण

2. (कान)

3.लेखन (हस्त) लिखित चाक्षुष दृश्य (आँख)

यह ध्यान में रहे कि इस संप्रेषण प्रक्रिया में वक्ता और श्रोता(audience) का एक कोड होगा तो संदेश समझा जा सकता है । यदि वक्ता हिन्दी जानता है तो श्रोता को भी हिन्दी का ज्ञान आवश्यक है। यह कोड भाषा केवल भाषा नहीं; संकेत भी हो सकते हैं, अंग-संचालन भी हो सकता है। बस इतना है कि उसे वक्ता और श्रोता दोनों समान रूप से समझ सकें ।

संप्रेषण मौखिक और लिखित रूप में तो होता ही है, किंतु आंगिक संप्रेषण का भी कम महत्व नहीं है।

इस प्रकार संप्रेषण के मुख्य तीन प्रकार हैं -

मौखिक संप्रेषण, लिखित संप्रेषण और अशाब्दिक अथवा आंगिक संप्रेषण ।

मौखिक संप्रेषण (Oral Communication) : अवधारणा और प्रकार

किसी भाषा का उल्लेख होते ही उसमें प्रयुक्त ध्वनियाँ, शब्दावली आदि के साथ उसके वर्णों तथा लेखन (लिपि) की संकल्पना भी हमारे मस्तिष्क में उत्पन्न होती है। यह सही है कि लिपि आज चाहे जितनी भी महत्वपूर्ण हो गई हो, किंतु इसका विकास भाषा में अपेक्षाकृत देर से हुआ । यह एक निर्विवाद सत्य है कि भाषा का आरंभ मौखिक या उच्चरित रूप से हुआ। आदि मानव को जब अपने मस्तिष्क में उत्पन्न विचारों को दूसरों तक संवाद अथवा बातचीत के द्वारा पहुँचाने की आवश्यकता अनुभव हुई, तभी से उच्चरित या मौखिक संप्रेषण का उद्भव हुआ । संप्रेषण केवल दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच सीधे संवाद का ही नहीं बल्कि आत्माभिव्यक्ति का भी माध्यम है ।

जब व्यक्ति केवल अपने आपको अभिव्यक्त करना चाहता है और उसके समक्ष श्रोता न हो, वहाँ उसे अभिव्यक्ति या संप्रेषण की दूसरी सरणियों अथवा तरीकों की आवश्यकता अनुभव होती है। अनेक पर्वत श्रेणियों और गुफाओं आदि में उकेरित चित्र एवं चित्र लिपि - अभिव्यक्ति के ऐसे ही माध्यम हैं । इसी सरणी में आगे चलकर लिपि का विकास भी हुआ । आदि मानव के शैल चित्रों के बाद लिपि का सबसे पहला रूप चित्रलिपि ही था । इसमें आज की तरह ध्वनि प्रतीक न होकर वस्तु प्रतीक ही चित्रित होते थे । उदाहरण के लिए मनुष्य, पशु, बर्तन, हथियार जैसी वस्तुओं के द्योतन के लिए इन वस्तुओं से मिलते-जुलते चित्र बना लिए जाते थे । ये चित्र ही लिपि चित्र होते थे और उस वस्तु का प्रतीक भी । आज भी यातायात संबंधी संकेतों का प्रयोग ऐसे चित्रों या प्रतीकों के रूप में किया जाता है । इस लिपि के संप्रेषण की विशेषता इसकी स्पष्टता तथा अर्थबोधन की सहजता है ।

संप्रेषण का मौखिक रूप प्रयोग के आधार पर कई प्रकार का मिलता है । प्रयोक्ता किस वर्ग, शिक्षा, व, जाति, धर्म, आदि से संबद्ध है, तदनुसार संप्रेषण के अनेक रूप उभर कर आते हैं; जैसे - साहित्यिक, बोलचाल, शुद्ध - अशुद्ध एवं ग्राम्य । प्रयोग के आधार पर संप्रेषण के जो भेद किए जा सकते हैं उसके तीन आधार प्रयोग का क्षेत्र, साधुत्व (शुद्ध एवं अशुद्ध) और प्रचलन (भाषा जीवित है या मृत) हैं । निर्माता के आधार पर संप्रेषण का मौखिक रूप बदलता रहता है । भाषा का निर्माता कौन है ? उसका क्या स्तर है? इस आधार पर भी संप्रेषण के अनेक रूप हो जाते हैं। यदि किसी भाषा का निर्माता समाज या देश है तो उस भाषा का संप्रेषण क्षेत्र विस्तृत होता है । वह मौखिक रूप में भी परंपरागत रूप से प्रचलित रहती है। इसके विपरीत यदि भाषा का संबंध व्यक्ति-विशेष से है या छोटे वर्ग से है तो वह कृत्रिम(Artificial) भाषा या बोली का रूप लेकर संप्रेषण के मौखिक रूप में व्यवहृत होती है।

अन्य कई (गौण) आधारों पर भी संप्रेषण का वर्गीकरण किया जा सकता है, जैसे - संस्कृति, ग्राह्यता, सुबोधता, मिश्रण आदि के आधार पर भी मौखिक संप्रेषण के भेद, उपभेद संभव है; परंतु इस प्रकार के भेदों, उपभेदों का अध्ययन प्रचलित नहीं है । वास्तव में परिनिष्ठित या परिष्कृत(refined) भाषा संप्रेषण के मौखिक एंव लिखित दोनों रूपों में प्रयुक्त होती है । साहित्यिक रचनाएँ इसी में होती है। शासन, शिक्षा एवं शिक्षित वर्ग में इसका ही प्रयोग होता है । यह भाषा व्याकरण की दृष्टि से भी परिष्कृत होती है । भाषा का व्याकरण इसी को आधार मानकर निर्मित होता है । अनेक समान भाषाओं में से विशिष्ट समाज या जन-सामान्य में अधिक प्रचलित होने के आधार पर किसी एक भाषा को संप्रेषण हेतु आदर्श मान लिया जाता है। शिक्षित वर्ग इसी का प्रयोग करता है। यह भाषा राजकीय स्तर पर स्वीकृत होने के कारण आदर्श भाषा के रूप में संप्रेषण के लिए व्यवहृत होती है । संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, रूसी, चीनी आदि भाषाएँ इसी श्रेणी में आती हैं।

मौखिक रूप में, संप्रेषण की सबसे छोटी इकाई व्यक्ति - बोली (Ideolect) होती है। यह भाषा की सबसे छोटी इकाई है। एक व्यक्ति की भाषा को व्यक्तिगत बोली कहा जाता है । एक समान भाषा होते हुए भी एक व्यक्ति की भाषा का रूप दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता है। ध्वनि-भेद, स्वर-भेद, सुर-भेद, आदि के आधार पर अलग-अलग व्यक्ति के भाषा- रूप को पहचाना जा सकता है। इसी आधार पर केवल ध्वनि को सुनकर हम किसी व्यक्ति विशेष को अंधकार में भी पहचान लेते हैं । व्यक्ति भेद से संप्रेषण में भी भेद हो जाता है। इस प्रकार व्यक्तियों की पृथक-पृथक ध्वनियों का विश्लेषण भी किया जा सकता है।

अपभाषा(Slang) का अर्थ और मुख्य लक्षण -

संप्रेषण के मौखिक रूप में ही अपभाषा (slang) भी आती है। अशिष्ट, असभ्य और अपरिष्कृत अथवा असंस्कृत भाषा को अपभाषा कहते हैं । महाभाष्यकार पतंजलि ने सर्वप्रथम अपभाषा की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। उनका कथन है -

ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै नापभाषितवै ।

अर्थात्

ब्राह्मण अथवा विद्वान को म्लेच्छ भाषा अर्थात् अशुद्ध भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए। अपभाषा में निम्नलिखित बातें होती हैं-

व्याकरणिक असम्मतता - इसमें शुद्धि -अशुद्धि का ध्यान न रखते हुए अमानक रूपों का प्रयोग होता है जैसे एकर (इसका), ओकर (उसका), गउवाँ (गाँव), गवा (गया) आदि ।

वाक्य रचना अपरिष्कृत - इसमें वाक्य-रचना प्रायः परिष्कृत नहीं होती; जैसे मैं बोला (मैंने कहा), मेरे से यह काम न होगा (मुझसे यह काम नहीं होगा), आदि ।

अशिष्ट शब्द का प्रयोग - शिष्ट समाज में अनुचित माने गए शब्दों का प्रयोग करना, जैसे – रंडी - पुत्रः, वंध्यापुत्र, अबे - तबे आदि का संबोधन, गाली वाचक शब्द ।

अपरिष्कृत मुहावरों का प्रयोग - इसके अंतर्गत मनगढ़ंत मुहावरों का प्रयोग सम्मिलित है। अर्थ-विस्तार या अर्थ- संकोच आदि की दृष्टि से, मारकर भुस भरना, मक्खन लगाना, मक्खनबाजी, पिटाई के लिए हजामत बनाना या कचूमर निकालना आदि मौखिक संप्रेषण प्रयोग में आते हैं ।

लिखित संप्रेषण (Written Communication) :

स्वरूप एवं विकास

मानव सभ्यता के विकास के साथ जीवन शैली की जटिलताओं में भी वृद्धि हुई है। ऐसे में प्रत्येक वस्तु का चित्र लिपि में अंकन करना कठिन हो गया । साथ ही अमूर्त भावनाओं और अनेक प्रकार के क्रियाकलापों की अभिव्यक्ति भी इस लिपि से भली प्रकार नहीं हो सकती थी। परिणामस्वरूप, लिपि क्रमशः प्रतीकात्मकता(symbolism) की ओर अग्रसर हुई । लिपि के विकास का अगला चरण शब्द लेखन था । इसके अंतर्गत लिपि प्रतीक वस्तु नहीं बल्कि शब्द होते थे। आज हमारी अधिकतर लिपियाँ ध्वनि पर आधारित हैं । अर्थात् किसी शब्द के उच्चारण में जो-जो ध्वनियाँ आती हैं, हम उन ध्वनियों के प्रतीक वर्णों को उसी क्रम में साथ रखते हैं; जैसे 'कमल' शब्द के लिए हम 'क', 'म', तथा 'ल' ध्वनि प्रतीकों को उसी क्रम में रख देते हैं और उनका इकट्ठा उच्चरित रूप उसी रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करता है। इसमें वस्तु का चित्रांकन नहीं होता । एक वस्तु के लिए एक ही निश्चित चिह्न होता है । लेखन में शब्दों के उन प्रतीक चिह्नों को चित्र लिपि की ही भाँति क्रम से प्रस्तुत किया जाता है। इस दृष्टि से यह चित्र लिपि से कुछ-कुछ मिलती है, किंतु इसमें अमूर्त

भावनाओं, विविध क्रियाओं आदि का द्योतन भी हो सकता है। इससे इसकी क्षमता तथा क्षेत्र चित्र लिपि से बहुत अधिक है। चीनी भाषा की लिपि इसी प्रकार की है। इस परिवार की लिपि में संसार का श्रेष्ठ साहित्य भी लिखा गया है, किंतु इसकी भी कुछ सीमाएँ हैं । मुख्य बात तो यही है कि भाषा में शब्दों की संख्या बढ़ती रहती है । यदि हर शब्द के लिए एक प्रतीक रखा जाए तो प्रतीकों की संख्या इतनी अधिक हो जाएगी कि उन्हें याद रखना भी संभव नहीं हो पाएगा। इतने प्रतीकों को समझना, पढ़ना और लिखना, यह सब कुछ अत्यधिक श्रमसाध्य है। इसमें जटिल भावनाओं, क्रियाओं एवं अमूर्त संकल्पनाओं के लिए प्रयुक्त शब्दों का विश्लेषण तथा अर्थबोध भी कठिन होगा ।

वर्णात्मक लिपि व्यवस्था(alphabetic script system):

लेखन संप्रेषण में अधिक स्पष्टता लाने के लिए आक्षरिक लेखन व्यवस्था अस्तित्व में आई। इसमें पूरे शब्द के लिए एक लिपि चिह्न न होकर अलग-अलग अक्षरों के लिए लिपि चिह्न निर्धारित किए गए। इसके अंतर्गत शब्दों में प्रयुक्त अक्षरों के लिपि चिह्न को जोड़कर शब्द लिखा जा सकता था । अक्षरों की संख्या शब्दों की अपेक्षा कम होती है, अतः इस श्रेणी की लिपि को याद रखना और लिखना शब्द - लेखन की अपेक्षा आसान था । यह लेखन प्रति अक्षरों की ध्वनियों पर आधारित थी। आगे चलकर यही वर्णात्मक लिपि व्यवस्था का आधार बनी। वर्णात्मक लिपि व्यवस्था अन्य व्यवस्थाओं से अधिक सहज और वैज्ञानिक सिद्ध हुई । इसमें लिपि चिह्नों का आधार अक्षरों के स्थान पर वर्ण बने । अक्षरों में एक से अधिक अक्षरों का मेल हो सकता है, किंतु वर्णों के द्वारा भाषा की ध्वनियों का बिल्कुल मूल रूप में प्रतिनिधित्व होता है।

आंगिक संप्रेषण (Non-verbal Communication):

अर्थ और स्वरूप

आंगिक संप्रेषण से तात्पर्य है शब्द रहित संदेश का प्रेषण । शब्द रहित संदेश भेजने और प्राप्त करने की प्रक्रिया से यह सिद्ध होता है कि शाब्दिक भाषा ही संप्रेषण का एकमात्र साधन नहीं है। संप्रेषण के अन्य साधन भी हैं ।

आंगिक संप्रेषण को शारीरिक चेष्टाओं- हाव-भाव, स्पर्श (हैपटिक संप्रेषण), शारीरिक भाषा (Body Language), भावभंगिमा, चेहरे की अभिव्यक्ति या आँखों के संपर्क से भी अभिव्यक्त किया जा सकता है। आवाज या वाणी के अंतर्गत समांतर भाषा नामक अवाचिक तत्व समाविश्ट होते हैं। इनमें आवाज की गुणवत्ता, भावना, बोलने के तरीके आदि के साथ ही ताल, लय, आलाप,, आरोह-अवरोह एवं तनाव जैसे छंदशास्त्र संबंधी लक्षण भी शामिल हैं । नृत्य भी अशाब्दिक या आंगिक संप्रेषण की ही एक शैली है । यद्यपि हम सर्वत्र नृत्य का उपयोग नहीं कर सकते, किंतु साहित्य-संस्कृति के अंतर्गत नृत्य एक सशक्त आंगिक संप्रेषण है। इसी तरह लिखित पाठ में भी अशाब्दिक तत्व होते हैं; जैसे तरीका, शब्दों की स्थान संबंधी व्यवस्था या इमोटिकॉन (Emoticon) का प्रयोग । आंगिक संप्रेषण के लिए 'अवाचिक संप्रेषण', 'वाचेतर संप्रेषण', 'अशाब्दिक संप्रेषण', या 'शब्दतेर संप्रेषण' आदि शब्द प्रयुक्त किए जाते हैं। आंगिक संप्रेषण या अशाब्दिक संप्रेषण अधिकतर अनियंत्रित संकेतों पर आधारित होता है। अलग-अलग संस्कृतियों के अनुसार यह पृथक-पृथक हो सकता है। कुछ हद तक यह अधिकतर मूर्ति सदृश (आइकॉनिक) है । इसे वैश्विक रूप से समझा जा सकता है।चेहरे की अभिव्यक्ति के संबंध में पॉल एकमैन (1960 के दशक में) ने एक महत्वपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया है कि गुस्सा, घृणा, भय, प्रसन्नता, उदासी, एवं आश्चर्य आदि भावनाओं की अभिव्यक्ति सार्वभौमिक होती है और यह अभिव्यक्ति आंगिक संप्रेषण से स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त भी हो सकती है।

आंगिक संप्रेषण का व्यावहारिक अध्ययन अधिकतर आमने-सामने की अंतः क्रिया (बातचीत) पर ध्यान केंद्रित करता है । मूक-बधिर स्कूलों में भी बच्चों को आंगिक संप्रेषण से ही संप्रेषण कराया जाता है। आंगिक संप्रेषण को तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित किया गया है ।

- वातावरण-परक स्थितियाँ जहाँ संप्रेषण घटित होता है।
- संप्रेषण का शारीरिक चरित्र-चित्रण एवं अंतः क्रिया (बातचीत)
- प्रेषक एवं प्रेषिती का व्यवहार

शिक्षण की प्रकृति

(Nature of education)

जैसा कि हमने कहा है कि शिक्षण व्यवहार में संशोधन या परिवर्त न करने की एक प्रक्रिया है, यह संचयी सुधारों में अंतर्निहित होती है जोकि विभिन्न परिवर्तनों के परिणामों के द्वारा अर्जित की जाती है जोकि शिक्षण की प्रगति में अपना महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण करती है। इसकी संवृद्धि अभ्यास(growth practice), आंतरिक दृष्टि, आंकलन व मूल्यांकन, अनुकरण या अनुबन्धन के परिणाम के रूप में समायोजन(Adjustment) की क्षमता में अनुभवों और सुधारों के माध्यम से होती है। शिक्षण सही अनुक्रिया को निर्मित करने में सम्मिलित है और लगातार कुछ स्थितियों को बनाए रखना होता है। यह एक प्रयोजनमूलक और लक्ष्य निर्देषित प्रक्रिया है। कोई भी अच्छा शिक्षण अपना महत्व ग्रहण नहीं कर सकता है, जब तक कि उस का लक्ष्य स्पष्ट और निष्चित न हो। इसकी गतिविधियाँ शारीरिक तथा मानसिक दोनों ही स्थितियों में समाहित होनी चाहिए और एक आंतरिक अनुभव की जाने वाली आवशयकता की अनुक्रिया या प्रतिक्रिया(response or

reaction) का परिणाम होती है। हालाँकि, शिक्षण एक व्यक्तिगत मामला नहीं है, सभी शिक्षण सामाजिक होते हैं। यह पर्यावरण या वातावरण की अनुक्रिया में स्थापित होता है, जिसमें व्यक्ति या समूह की संरचना बनी होती है। हम बहुत सारी चीजें अपने परिवार के लोगों से, विद्यालय और महाविद्यालयो में, खेल के मैदान में और अपने व्यवसाय के साथ परस्पर व्यक्तिगत व्यवहार को समझना क्रियाकलापों के माध्यम से सीखते हैं, उनके सहयोग की बहुत बड़ी भूमिका होती है। बहुत सारी अनइच्छापूर्ण शिक्षण अथवा घटनाक्रम शिक्षण जो सीख जाते हैं, यह सब समाज के प्रभाव के कारण होते हैं, यहाँ तक कि हम जिस रंग में रंगे होते हैं, यह सब उन सामाजिक समूहों के प्रभाव के कारण होता है, अर्थात् यह सब उस समाज की देन होती है जिससे हम सम्बन्धित होते हैं।

शिक्षण के सिद्धान्त(Principles of teaching)

शिक्षण प्रक्रिया में कुछ सिद्धान्त सम्मिलित होते हैं। इनमें से कुछ सिद्धान्त हैं

सार्वभौमिकता(universality) : शिक्षण किसी भी आयु, जेन्डर, नस्ल, संस्कृति, समय और स्थान इत्यादि से प्रतिबन्धित नहीं होता है। इसलिए यह प्रकृति में सार्वभौमिक है, यानी सभी सीमाओं से पार है।

सतत् प्रक्रिया(continuous process) : इस प्रक्रिया का कहीं भी अन्त नहीं है, यह उदर से समाधि तक विस्तारित है। शिक्षण की प्रकृति जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है।

शिक्षण के माध्यम से विकास : वुडवर्थ ने ठीक ही कहा है, कि "सभी प्रकार की गतिविधियों को शिक्षण कह सकते हैं, जो व्यक्ति के विकास की प्रक्रिया को गति

प्रदान करता है। विकास शिक्षण के रूप में कभी भी समाप्त न होने वाली प्रक्रिया है।"

वास्तविक जीवन की स्थितियों के सम्बन्ध में गतिशील और लचीली(Flexible) है : शिक्षण एक स्थान रिक्त या रुकी हुई प्रक्रिया नहीं है, यह एक सक्रिय व गतिशील प्रक्रिया है, अथवा यह कह सकते हैं कि एक सक्रिय परिघटना है। जीवन शैली या जीने के तरीके और ज्ञान प्राप्त करने के लिए विषय से विषय और एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक भिन्न प्रकार के हो सकते हैं, उनके तरीके अलग-अलग हो सकते हैं, इसलिए वास्तविक जीवन की स्थितियों पर आधारित शिक्षण के अनेक मार्ग होते हैं।

एक साधन के रूप में : शिक्षण प्रयोजनमूलक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए निर्देषित करती है, इसलिए, यह साध्य को प्राप्त करने के लिए एक साधन है, और इसका कभी अन्त नहीं होता है।

समायोजन का नेतृत्व(lead adjustment) : षिक्षण एक व्यक्ति को उसकी उपस्थिति, नई स्थितियों/वातावरण के साथ स्वयं को समुचित रूप से समायोजित करने में सहायता करता है। अधिकतर समय में षिक्षण संषोधन, अनुकूलन और व्यवहार को विकसित करने के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होता है या दिखाई देता है।

अभ्यास का परिणाम : षिक्षण का मूल आधार ड्रिल और अभ्यास होता है, इसलिए, यह विद्यार्थी को सबसे श्रेष्ठ सीखने और षिक्षण प्रकृति और सिद्धान्त सूचनाओं को लम्बे समय तक याद रखने में सहयोग देता है, जब वे फलदायक अभ्यास और उसका बार-बार अभ्यास करते हैं।

शारीरिक और मानसिक परिपक्कवता : किसी भी विषय को सीखते समय शारीरिक और मानसिक परिपक्कवता अत्यंत आवष्यक है, अन्यथा वास्तविक षिक्षण प्राप्त नहीं हो सकता है।

हस्तांतरणीय(transferable) : व्यक्ति के द्वारा जो भी कुछ सीखा गया है उसको सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव के साथ अन्य व्यक्ति को षिक्षण हस्तांतरित किया जा सकता है।

शिक्षण को प्रभावित करने वाले कारक

एक सीखने वाले या विद्यार्थी के व्यवहार को प्रस्तुत संशोधनों की शर्तों में शिक्षण की सफलता और असफलता निर्भर करती है कि प्राप्त करने वाला विद्यार्थी कितने कारकों को स्वीकार कर सकता है। इनमें से कुछ कारकों का नीचे उल्लेख किया गया हैः

व्यक्तिगत कारक

- शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य
- आयु
- परिपक्कवता(maturity)
- भावनात्मक स्थिति
- आवश्यकताएं
- हित या अभिरूचि
- प्रोत्साहन
- योग्यताएँ

SACHIN ACADEMY

- अभिरूचि, इत्यादि

सामाजिक कारक

- घरेलू वातावरण
- विद्यालय का वातावरण
- सांस्कृतिक संदर्भ
- शिक्षण सामग्री
- अध्यापकों, माता-पिताओं तथा समान समूहों इत्यादि के साथ सम्बन्ध।

शिक्षण के सिद्धान्त

अनेक मनोवैज्ञानिकों ने भरपूर प्रयास और स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि शिक्षण प्रक्रिया किस प्रकार और क्यों व कैसे स्थापित होती है, या प्रोत्साहित होती है। इस सम्बन्ध में पशुओं और मानव पर भरपूर परीक्षणों को सम्पादित किया गया है। अनुसंधानकर्ताओं ने अनेकों निष्कर्षों को प्रस्तुत किया है, जोकि शिक्षण के सिद्धान्तों के रूप में स्वीकृत किए जाते हैं। शिक्षण के प्रतिरूपों के सम्बन्ध में बहुत सारे सिद्धान्तों को स्पष्ट किया हैः (1) परीक्षण और त्रुटि शिक्षण सिद्धान्त; (2) क्लासिकी शिक्षण सिद्धान्त; (3) सक्रिय अनुबंधन ; (4) संज्ञान शिक्षण सिद्धान्त; और (5) सामाजिक शिक्षण सिद्धान्त, इत्यादि सम्मिलित हैं।

अनुबन्धन सिद्धान्त - "अनुबंधन" शब्द का अर्थ "प्रशिक्षण या प्रयोग करना" या नई स्थितियों के लिए अपने आपको अभ्यस्त करना है या फिर अपने आपको उद्दीपन करना व प्रेरणा लेना है। यह अपने आपको प्रतिस्थापित करने की प्रक्रिया है और मूल प्रेरणा को नई प्रेरणा में स्थापित करना है और इसके साथ अनुबंधन को जोड़ दिया गया है या जोड़ दिया जाता है। अनुबंधन के दो प्रकार हैः

(1) क्लासिकी अनुबंधन (Classical Conditioning)

(2) सक्रिय अनुबंधन (Operant Conditioning)।

1. क्लासिकी अनुबंधन सिद्धान्त (Classical Conditioning) -

ई.एल. थोर्न डाइक और आर.एस. वुडवर्थ ने प्रेरणात्मक-अनुक्रिया प्रस्तावित की, जो शिक्षण से अनुबंधित है। सिद्धान्त के अनुसार प्रेरणा इसकी अनुक्रिया के साथ संबद्ध है, ये अनुबंध प्रेरणात्मक-अनुक्रिया के बीच हैं जो गति (मोटर) बोधात्मक(cognitive), भावनात्मक तथा संकल्पनात्मक और प्रणाली में संगठित कर सकती है।

इसके पश्चात् अनुबंधन अनुक्रिया के व्यवहारात्मक सिद्धान्त का रूसी मनोवैज्ञानिक पावलोव द्वारा विकास किया गया तथा वह क्लासिकी अनुबंधन सिद्धान्त के लिए प्रसिद्ध हुए। पावलोव ने एक भूखे कुत्ते पर परीक्षण किया जिसने अनुबंधन सिद्धान्त को सूत्रबद्ध करने में योगदान दिया। सामान्यतः एक भूखे कुत्ते को खाना दिया जाता है तो वह अपनी लार टपकाने लगता है। उसने एक परीक्षण करना आरंभ किया, वह जब भी कुत्ते को खाना देता था, उस समय एक घंटी बजाता था।

वह इस प्रक्रिया को बार-बार करता था। अन्त में वह बिना खाना दिए ही घंटी बजाने लगा। यहाँ तक कि खाना न देने के बाद भी घंटी बजाते ही वह कुत्ता अपनी लार टपकाने लगता था। इसी तरह हम देखते हैं कि जब घंटी बजती थी तो उत्तेजक हो जाता था और अब कुत्ता लार टपका कर अनुक्रिया करता था जोकि अनुबंधित थी - अर्थात कुछ इस प्रकार से अनुबंधित अनुक्रिया करता था जो लार के रूप में हमारे सामने आती है। यहाँ पर एक कमजोर प्रेरणा या उत्तेजना (घंटी) शक्तिशाली प्रेरणा (खाने) के साथ संबद्ध है। इसलिए कुत्ता सशक्त प्रेरणा के साथ अपनी अनुक्रिया को स्थानान्तरित करके उसके साथ जोड़ देता है। इन परीक्षणों के साथ की जो शब्दावली है उसमें इनको अनुबंधित प्रेरणा (घंटी का बजाना), अनुबंधित अनुक्रिया (लार टपकाना), अनुबंधित अनुक्रिया (बिना भोजन या खाने को दिए बिना लार टपकाना, इन सबको शिक्षण में सम्मिलित किया गया है। पावलोव की यह खोज मनो-शारीरिक की प्रकृति में सीमित है। उदाहरण के लिए एक बहुत छोटा बच्चा बिना किसी भय के बिल्ली के बच्चे को छूता है, परन्तु यदि कोई व्यक्ति हर बाद बिल्ली के बच्चे को छूने से रोकता है, इसके पश्चात् वह बच्चा धीरे-धीरे उस बिल्ली के बच्चे को छूने से डरने लगता है।

शैक्षिक निहितार्थ

अनुबन्धन का सिद्धान्त शिक्षण के सभी प्रकारों को स्पष्ट नहीं करता है, यहाँ तक कि इस सिद्धान्त के माध्यम से शिक्षण के चीजों या विषयों में उसके महत्वपूर्ण मूल्य को पुनरावृत्ति करके इसको समझ सकते हैं। ड्रिल अत्यंत आवश्यक है परन्तु इसको लाभदायक और प्रेरणापूर्वक या प्रेरणामूलक होना चाहिए। इससे महत्वपूर्ण

यह है, कि बाधा डालना और उसका विरोध करना की प्रभावों को षिक्षण की प्रक्रिया के दौरान ही समाप्त कर देना चाहिए।

2. सक्रिय अनुबंधन (Operant Conditioning) -

ई.एल. थोर्न डाइक ने अपने प्रेरणात्मक-अनुक्रिया सिद्धान्त में टिप्पणी की है, कि अनुक्रिया या व्यवहार चाहे व्यवहार के परिणामस्वरूप कमजोर हो अथवा सशक्त इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता है। इस संकल्पना को बी.एफ. स्कीनर ने परिष्कृत किया है जिसको सक्रिय अनुबन्धन के नाम से जाना जाता है। सक्रिय अनुबन्धन का अर्थ है कि इसको सुदृढ़ और क्लीनिक तथा चिकित्सा स्थापना में व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता हैं मूलरूप से स्कीनर इनके व्यवहार परिवर्तन के लिए दृढ़ता से प्रयोग करता है। उसने शिक्षण यन्त्र बॉक्स की रचना की है, जिसे स्कीनर बाॅक्स कहते हैं। यह चूहे का बॉक्स है इसका इस तरह से डिजाइन किया गया है, कि जिसमें हर बार जब चूहा लीवर की ओर जाएगा उसको खाने की गोलियाँ मिलेंगी। अतः चूहे की गतिशीलता लीवर की ओर जाती है और खाने की गोलियों के मिलने से वह पूरी शक्ति के साथ प्रशिक्षित हो जाती है। यह चूहे के व्यवहार का जो विचार है जिसको उन्होंने आकार दिया है इसका विस्तार मानव व्यवहार के साथ संबद्ध कर दिया गया है। इस परीक्षण में प्रमुख घटक हैं, कि व्यवहार को संशोधित करना एक अभिन्न अंग है जोकि निश्चित समय और स्थिरता में सम्पन्न किया जाना आवश्यक है। यह कार्य प्रभावी और दृढ़ता के रूप में होना चाहिए।

स्कीनर ने अपने परीक्षण में इन कारकों के महत्व पर विशेष प्रकाश डाला है।

समय: अनुक्रिया और सुदृढ़ता के बीच का समय न्यूनतम होना चाहिए। यदि चूहे को तुरंत खाने की गोलियाँ नहीं मिलती हैं, तो वह लीवर की ओर चला जाएगा, यह व्यवहार दोबारा से पुनरावृत्ति नहीं होगी।

दृढ़ता(Perseverance): चूहा लीवर की ओर तब ही जाएगा जब उसको खाने की गोलियाँ मिलेगी। इसलिए प्रत्येक अनुक्रिया को दृढ़ता प्रदान की जानी चाहिए।

स्कीनर ने दृढ़ता करने वाले के दो प्रकारों की संकल्पना को विकसित किया हैः (1) प्राथमिक दृढ़ता करने वाला जोकि स्वाभाविक होता है और यह (खाना, गरमाहट, यौनिक संतुष्टि) संतुष्ट नहीं होता है; तथा (2) द्वितीय दृढ़ता करने वाला प्रोत्साहित होता है जिसमें वह अत्यधिक प्रेरणा देता है। इसके अतिरिक्त बी.एफ. स्कीनर "सकारात्मक सुदृढ़ता देने वाला" (पुरस्कार) और नकारात्मक दृढ़ता देने वाला (दण्ड देना) व्यवहार को आकार प्रदान करता है। यद्यपि आकार देना, यह प्रायः पशुओ को प्रशिक्षित करने के लिए प्रयोग किया जाता है। यह मानव व्यवहार को संशोधित करने में भी बहुत ही लाभदायक व्यवहार है।

शैक्षिक निहितार्थ:

सक्रिय अनुबन्धन के सिद्धान्त के अनुसार विद्यार्थियों के व्यवहार के अनुसार विद्यार्थियों को व्यवहार के दृढीकरण करने के लिए पुरस्कार देने की व्यवस्था की है। एक वांछित व्यवहार सकारात्मक दृढीकरण के प्रयोग के द्वारा उसको तेज किया जा सके।

संज्ञानात्मक शिक्षण सिद्धान्त(Cognitive teaching application)

इसे पहले के शिक्षण व्यवहार के प्रकारों में शिक्षण को प्रेरणा और अनुक्रिया

के साहचर्य के शब्दों से स्पष्ट किया गया है, परन्तु बहुत सारी मानव शिक्षण की स्थितियाँ हैं, जिनकी प्रेरणा और अनुक्रिया के बीच या अनुक्रिया और सुदृढीकरण के बीच साहचर्य के विषिष्ट प्रकार सम्मिलित नहीं हैं।

सन 1920 के दशक में जर्मन के मनोवैज्ञानिक वोल्फगेंग कोहलर ने अपने अध्ययन में एप्स के व्यवहार की खोज की है। उन्होंने कुछ सामान्य परीक्षण करके अभिकल्प या नमूने बनाए हैं जोकि शिक्षण के प्रथम संज्ञानात्मक सिद्धान्तों में से एक है जिसको "अंतर्दृष्टिपूर्ण शिक्षण" (Insightful Learning) नाम से जाना जाता है।

कोहलर का परीक्षण

कोहलर ने एक चिम्पांजी (सुलताना) के पिंजरे के अन्दर कुछ समुचित फल खाने के लिए रख दिए, और प्रायः एक केला उसके पिंजरे के बाहर रख दिया। यह फल या केला चिम्पांजी की पहुँच से बाहर होता था जो उसे प्राप्त नहीं कर सकता था। इस फल को प्राप्त करने के लिए चिम्पांजी उसके पास की किसी वस्तु को औजार या साधन के रूप में प्रयोग करता था। प्रायः चिम्पांजी अपनी समस्या का स्वयं हल निकाल लेता था उसको यह निश्चित हो गया था कि अन्दर में कुछ है। इसके बाद के वर्णन कुछ विशिष्ट हैः सुलताना यानी चिम्पांजी पिंजरे में बंद है और वह फलों तक पहुँचने में असमर्थ है। फल पिंजरे के बाहर रखे हैं, फलों को प्राप्त करने के

लिए, उसके पास केवल एक ही उपाय है जो एक छोटी डण्डी है। एक लम्बी छड़ी भी है जो पिंजरे के बाहर है, यह कोई दो मीटर लम्बी है, इसके लिए एक तरफ कोई वास्तु लगी हे जो जाली है। इसे चिम्पांजी हाथ से नहीं पकड़ सकता है परन्तु यह इसे छोटी डण्डी से पकड़कर उस बड़ी छड़ी को अपनी ओर खींच सकता है, यह सब समझ गया था यानी छोटी छड़ी को साधन के रूप में प्रयोग करके समस्या का हल कर सकता था। सुलताना ने छोटी छड़ी से बड़ी छड़ी को खींच कर अपनी पकड़ की सीमा में ले लिया परन्तु सफल नहीं हुआ। उसने अपने पिंजरे की जाली की तारों को तोड़ा परन्तु फिर भी सफलता प्राप्त नहीं हुई फिर उसने आसपास अच्छी तरह से देखा। उसने तुरंत छोटी-छोटी छड़ी को पकड़ा और उसकी सहायता से उसने लम्बी छड़ी को अपने पास खींच लिया और वह फलों तक पहुँच गया। यानि कि छोटी छड़ी से बड़ी छड़ी को खींच कर बड़ी छड़ी के माध्यम से फल प्राप्त कर लिए और वह सफल हो गया। कोहलर ने इसको संज्ञानात्मक प्रक्रिया का नाम दिया है और उसने सुलताना यानी चिम्पांजी के व्यवहार को आन्तरिक दृष्टि के रूप के माध्यम से जागरूकता को दर्शाया है, उसने यह सिद्ध किया है कि ऐसी वस्तुएँ हैं जो एक दूसरे से बिल्कुल अलग हैं किन्तु आंतरिक जागरूकता के माध्यम से उन दोनों वस्तुओं को एक दूसरे से संबद्ध करके सफलता प्राप्त कर ली। इस तरह से सिद्ध करने का प्रयास किया गया है, पहले कुछ तत्व अलग अलग थे, किन्तु आंतरिक दृष्टि के माध्यम से उन तत्वों को जोड़ कर सफलता प्राप्त कर ली गई या की जा सकती है।

चिम्पांजी के कार्य निष्पादन के कुछ पक्ष हैं, जो कि स्कीनर के चूहों से मेल नहीं खाते हैं। एक चीज यह है कि चिम्पांजी को अकस्मात समस्या का समाधान माध्यम मिल गया

उसको क्रमांक परीक्षण और उसकी त्रुटि प्रक्रिया की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी और अपना कार्य तुरन्त आरंभ कर सफलता प्राप्त कर ली। कोहलर का चिम्पांजी उसके समक्ष नवीन स्थितियों में क्या करना चाहिए उसको जानते ही तुरंत उसका स्थानान्तरण कर देता है। उदाहरण के लिए, एक केस में सुलताना को पिंजरे में नहीं रखा गया था। वह पिंजरे से बाहर था और कुछ केलों को इतनी ऊँचाई पर रख दिया था कि वह किसी भी तरह से उन केलों तक नहीं पहुँच सकता था। केलों को प्राप्त कैसे किया जाए यह समस्या चिम्पांजी के समक्ष खड़ी थी। परन्तु वह देखता हे कि बहुत सारे बॉक्सों उसके आसपास बिखरे पड़े हैं। सुलताना ने तुरंत ही उन बॉक्सों को सरका एक दूसरे के ऊपर रखकर एक मंच जैसा बना दिया, अब वह उस मंच पर चढ़ गया और उसने उन केलों को प्राप्त कर लिया जो बहुत ऊँचाई पर रखें गए थे। इसका अर्थ यह हुआ कि शिक्षण ने तुरंत अपना स्थान ग्रहण कर लिया यानी कि जागरूकता उत्पन्न हो गई अथवा इसको यह कह सकते हैं कि बिना किसी परीक्षण के समाधान निकल आया और उसका प्रयोग करके

चिम्पांजी को फल प्राप्त करने में सफलता प्राप्त हो गई।

निहितार्थ

शिक्षण प्रयोजनमूलक और लक्ष्य मूलक गतिविधि है।

सम्पूर्णता पर बल दिया जाना चाहिए, शिक्षण की अधिकतमता को उत्पन्न करना चाहिए। एक भाग से सम्पूर्णता तक।

इसमें उच्च स्तर का चिन्तन, विवेचन और विद्यार्थियों के बीच रचनात्मक प्रवृत्तियों को विकसित किया जाना चाहिए।

यह समस्या समाधान की अभिवृत्तियों को विकसित करती है।

सामाजिक शिक्षण सिद्धान्त (Social teaching application)

सामाजिक शिक्षण सिद्धान्त को अलबर्ट बौंडुरा ने प्रतिपादित किया है। सामाजिक शिक्षण सिद्धान्त के अनुसार शिक्षण सामाजिक संदर्भों के माध्यम से पैदा होता है। यह सिद्धान्त सुझाव देता है कि सीखने वाले या विद्यार्थी का अन्य विद्वानों या विशेषज्ञों के साथ सामाजिक क्रियाकलाप व्यक्ति के शिक्षण को प्रभावित करता है। यह शिक्षण के कारकों के रूप में सावधान, धारण करना या धारणा बनाना, पुनः उत्पादन को गति देना और प्रोत्साहन करने पर अपना ध्यान केन्द्रित करती है।

अलबर्ट बैंडुरा, अपने सिद्धान्त में प्रस्तावित करते हैं कि शिक्षण में अन्य लोगों के व्यवहार का आंकलन करना या अवलोकन करना एक बहुत बड़ी भूमिका निभाता है।

उदाहरण के लिए, एक बच्चा अपने बड़ों के व्यवहार का अवलोकन करते हुए प्रेम, स्नेह, क्रोध या सदभावना व संवेदना को सीखता है और उसका पालन करता है। वह बच्चा अपने माता-पिता और अपने अध्यापकों से बोलना, पढ़ना और लिखना भी सीखता है। अपने अनुसंधान और शोध के पश्चात् बांडुरा ने अवलोकन शिक्षण के तीन प्रमुख मॉडल निर्धारित किए हैं, जो निम्न प्रकार हैः

1. जीवित मॉडल (Live Model) - इसमें व्यवहार निष्पादन के लिए एक वास्तविक व्यक्ति को सम्मिलित किया जाता है।

2. मौखिक अनुदेशात्मक मॉडल (Verbal Instructional Model) - इसमें मॉडल व्यवहार का विवरण देने वालों को शामिल किया जाता है।

3. प्रतीकात्मक मॉडल (Symbolic Model) - इसमें टेलीविजन, पुस्तकें, ऑनलाइन, मीडिया के माध्यम से वास्तविक या काल्पनिक चरित्रों के व्यवहार इत्यादि को प्रदर्शित किया जाता है।

बैंडुरा स्पष्ट करते हैं कि शिक्षण में प्रायः निम्नलिखित कदम सम्मिलित होते हैं:

(1) उपस्थित होकर तथा समझ लेना: एक आदर्श भूमिका के अवलोकन से बच्चे का ध्यान आकर्षित होता है, यानी बच्चा उस पर ध्यान केन्द्रित करता है।

(2) व्यवहार का स्मरण रखना: बच्चा कार्य और शैली को याद रखता है।

(3) स्मृति को कार्य में परिवर्तन करना: बच्चा आदर्श भूमिका, रोल मॉडल का अनुकरण करता है या नकल करता है। एक व्यवहार का अवलोकन करना और विद्यार्थी द्वारा उसको याद रखना, इसको सीखने वाले की स्वीकार्यता(admissibility) की शर्तों में विश्लेषित करता है। वह इसके पश्चात् ही कार्य में परिवर्ति त होता है और अतः प्रासंगिकता का अवलोकन करना तथा मॉडल के व्यवहार के पक्षों को स्वीकार करना और सीखने वाले या अभ्यास के द्वारा उनका अनुकरण करना होता है।

(4) अनुकरण किए गए व्यवहार का सुदृढ़ीकरण : बच्चा स्वयं एक आदर्श भूमिका में अपने आपको परिवर्तित करने का प्रयास करता है। अभ्यास के द्वारा मॉडल के व्यवहार का अनुकरण करता है और उसको समुचित रूप से अपनाने और आगे उसको लगातार बनाए रखने के लिए उसका सुदृढ़ीकरण

करना होता है। इस प्रकार से, अवलोकन के माध्यम से सामाजिक शिक्षण और मॉडललिंग यह सिद्ध करती है कि एक व्यक्ति के व्यवहार से सम्बन्धित अनेक चीजें शिक्षण के प्रभावी साधन होंगे। इन अवलोकनों का प्रभाव उसके वातावरण, अभिव्यक्ति, प्रेम, क्रोध, घृणा, मित्रमण्डली, मित्रता या अभिवृत्ति या एकाकीपन पर प्रकट होती है जोकि अवलोकन तथा व्यवहार करने के उसके तरीकों से सामूहिक रूप से अभिव्यक्त होती है। ये सब प्रतिक्रियाएँ और अनुक्रियाएँ उसके इस विषय पर निर्भर करती हैं, कि उसने अपने अनुभवों तथा मॉडलों के संदर्भ में क्या देखा, याद किया, अनुकरण और सुदृढ़ीकरण किया है।

निहितार्थ

- अवलोकनात्मक शिक्षण सीखने की धारणा और जीवन कौशलों के ज्ञान में वृद्धि करती है।
- व्यवहार के ध्यान व चिंतन की वृद्धि करने के लिए अध्यापकों के द्वारा विभिन्न सुदृढ़ीकरणों और मॉडलिंग का प्रयोग कर सकते हैं।
- विद्यार्थी अपने अध्यापकों के सकारात्मक व्यवहारों को उनकी आदर्श भूमिका के रूप में अनुकरण कर सकते हैं।
- व्यवहारों और उनके परिणामों के बीच स्पष्ट अन्तर होता है तथा वांछित व्यवहार में वृद्धि और अवांछित व्यवहार में कमी होने के ये प्रभावी परिणाम देखे जा सकते हैं।

शिक्षण प्रविधियाँ(teaching methods)

हम सभी के विद्यालय- महाविद्यालय स्तरों पर पढ़ाई करते समय कुछ पसन्दीदा अध्यापक रहे होंगे। उनकी पढ़ाई गयी विषयवस्तु हमें आज तक याद है। जानते हैं ऐसा क्यों? क्योंकि उनके पढ़ाने का तरीका, समझाने का ढंग इतना अच्छा तथा सरल था कि उन पाठों को हम आज अपने छोटों को आसानी से समझा लेते हैं। ये पढ़ाने का तरीका ही शिक्षण विधि है। शिक्षण विधि वास्तव में शिक्षण प्रक्रिया की शुरूआत है। शिक्षण कैसे हो इसका उत्तर शिक्षण विधि द्वारा ही प्राप्त होता है। पाठ्यवस्तु कितनी समझ में आयी और कितनी और अच्छी तरीकों से समझायी जासकती है। इसका निर्धारण शिक्षण विधि द्वारा किया जाता है।

परिभाषा -

थ्रींग के अनुसार- "शिक्षक शिक्षण प्रविधियों के द्वारा अपने छात्रों को कार्य करने के योग्य बनाता है, और स्वयं यह दर्शाने में लगा रहता है कि इस कार्य को कैसे किया जायेगा साथ ही इस बात के लिए सतर्क रहता है कि वे इसे करें।"

एम0पी०मॉफेट - "शिक्षण प्रविधियों का प्रयोग शिक्षक द्वारा अध्ययन करने के लिए दिये गये निर्देशात्मक तरीकों में होता है।"

प्रश्नोत्तर प्रविधि(Questioning method)

जिज्ञासा मानव स्वभाव की पहचान है। सदियों से मानव ने अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए नित नये प्रयोग किए और आविष्कारों से ज्ञान जगत को समृद्ध किया। जिज्ञासा ही प्रश्न पूछने का मूल रूप है। शिक्षण कार्य की शुरूआत प्रश्नविधि से किया जाये तो शिक्षक अपनी समस्त शिक्षण योजना को नियोजित

स्वरूप दे सकता है।वास्तव में इस प्रविधि का जन्मदाता सुकरात को कहा जाता है। उन्होंने इसके तीन सोपान बताये-

निरीक्षण(inspection)

अनुभव (Experience)

परीक्षण (tests)

प्रश्न विधि का महत्व

- जिज्ञासा
- रुचि व एकाग्रता
- चिन्तन(Thinking)
- पाठ विस्तार
- समस्या समाधान की क्षमता
- शिक्षण मूल्यांकन
- नवीन ज्ञान से सम्बद्धीकरण
- सक्रियता
- कक्षा अनुशासन

प्रश्न प्रविधि शिक्षण को सहज व क्रमबद्ध करती है। इसके लिए कुछ बातें जानना जरूरी है-

- प्रश्न सरल तथा स्पष्ट हो।

- प्रश्न पाठ्यवस्तु से सम्बद्ध हो।
- प्रश्न सम्पूर्ण कक्षा से किए जाएं।
- प्रश्न पूर्व ज्ञान से जोड़ते हुए पाठ का विस्तार करने वाले हो।
- प्रश्न शिक्षण स्तर के अनुकूल हो।
- प्रश्नों में क्रमबद्धता हो।
- शिक्षक को विषय का पूर्ण ज्ञान हो।
- प्रश्नों के माध्यम से चलने वाला शिक्षण प्रभावशाली होता या यूँ कहे कि प्रश्न शिक्षक के लिए अच्छे साथी के रूप में सहयोग देते हैं।

विवरण विधि(Detail method)

शिक्षण की ऐसी विधि जिसमें पाठ्यवस्तु, प्रसंग, घटना, स्थान का सरल भाषा में कथन किया जाता है इसलिए इसे कथन विधि भी कहते हैं। इसमें अज्ञात से ज्ञात की स्थिति की ओर अग्रसर होते हैं।

उदाहरण विभिन्न ऐतिहासिक स्थलों के बारे में बताना-कुतुबमीनार, बुलन्द दरवाजा, ताजमहल, आदि के बारे में बताना कि वे कहाँ स्थित है, किसने बनवाया, किस लिये प्रसिद्ध है, यह विवरण हैं।

विवरण की उपयोगिता

- अनुभवों को मूर्तरूप
- बोध विस्तार
- तथ्यात्मक ज्ञान(factual knowledge)
- मानसिक क्षमता

- ध्यान केन्द्रीकरण

विवरण विधि से शिक्षण करते समय कुछ सावधानियाँ बरतनी चाहिए-

- विवरण विषयवस्तु से सम्बद्ध हो।
- विवरण सरल, स्पष्ट हो।
- विवरण, चित्र, मॉडल, श्यामपट्ट के द्वारा प्रस्तुत किया जाय।
- विवरण अत्यधिक रूप से बड़ा न हो। खण्डों में प्रस्तुत हो।
- विवरण छात्र स्तर के अनुकूल हो।

विवरण के अन्त में एक दो प्रश्न पूछकर छात्रों के अधिगम स्तर का पता लगाया जाना चाहिए।

वर्णन विधि(Description method)

शिक्षण की इस प्रविधि में विषय वस्तु का विस्तार से कथन किया जाता है ताकि छात्रों को पाठ अच्छी तरह से समझ में आ जाय। इस विधि में हालांकि शिक्षक ही ज्यादा सक्रिय रहता है किन्तु यदि रुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया जाय तो छात्र भी सक्रियता से भाग लेते हैं और सम्प्रेषण प्रभावी हो जाता है।

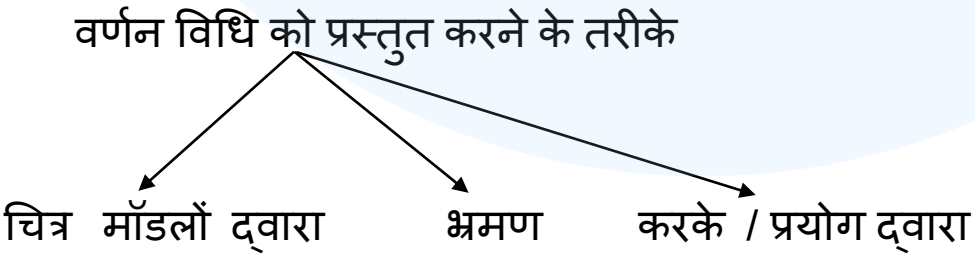

व्याख्या विधि(Explanation method)- किसी भी विषयवस्तु का गहन ढंग से विश्लेषण करना व्याख्या कहलाता है। इस विधि काप्रयोग ज्यादातर जटिल विषयों को समझाने के लिए तथा उच्च स्तर पर किया जाता है। उदाहरण के तौरपर 'समास' को लें इसे समझाना हो तो समास दो शब्दों से मिलकर बना है- सम+अस, सम का अर्थ होता है- समीप/पास और अस् का अर्थ बैठना। जिस क्रिया में संक्षेपीकरण किया जाय या दो या अधिक शब्दों को मिलाकर लिखा जाय उसे समासिक पद कहते हैं।

रामलक्ष्मण, माता-पिता, शास्त्रकुशल

फिर इन पदों का विग्रह करके बतायेंगे-

राम और लक्ष्मण, माता और पिता, शास्त्रों में कुशल

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि व्याख्यान विधि में किसी भी प्रसंग को विस्तार से समझाया जाता है।

स्पष्टीकरण प्रविधि(Clarification method)

किसी वस्तु, विषय, घटना को अच्छी तरह समझाना स्पष्टीकरण कहलाता है, इस विधि को उद्घाटन विधि भी कहा जाता है। यह विधि ज्यादातर जटिल विषयों को सरल रूप से बोधगम्य बनाने के काम आती है। शिक्षक को चाहिए कि पाठ्यवस्तु के प्रमुख पक्षों का चयन कर लें और उसके बारे में प्रत्येक बातों को प्रकाशित करे। इसके लिए चित्रों, मॉडलों, श्यामपट्ट लेखन को माध्यम बनाया जाना चाहिए। स्पष्टीकरण विधि से शिक्षण की सफलता इस बात में निहित है कि शिक्षक को अपने विषय का पूर्ण ज्ञान हो ताकि उसे समग्र रूप में अधिगमकर्ता के समक्ष

प्रस्तुत कर सके । उदाहरण के तौर पर सौरमंडल पढ़ाना हो तो इसमें सौरमण्डल का अर्थ उन ग्रहों, तारों के समूह को स्पष्ट करना होगा फिर प्रत्येक ग्रह, तारों की स्थिति, प्रक्रिया को स्पष्ट रूप से समझाना होगा। इसके लिए चित्रों, तारामंडल भ्रमण का सहारा लिया जा सकता है।

स्पष्टीकरण विधि से लाभ

- प्रत्येक पहलू का ज्ञान
- क्रमबद्धता व तार्किकता
- ज्ञान की समग्रता
- प्रत्येक बिन्दु का ज्ञान
- कहानी कथन प्रविधि

एक राजा था, एक राजकुमारी थी, एक परी थी, जैसे वाक्यों से शुरू होने वाली कहानियाँ हम सभी ने अपनी दादी-नानी से सुनी होगी, और उसमें बताई गयीं बातें हम सभी को याद भी है। यही विधा कहानी कथन कहलाती है। इसका सबसे बड़ा महत्व यह है कि यदि शिक्षण का स्थायी प्रभाव डालना हो तो शिक्षण को कल्पना द्वारा, आकर्षक तरीके से कथा का रूप देकर प्रस्तुत किया जाये तो बच्चे जल्दी सीखेंगे। कक्षागत अनुशासन भी बना रहेगा और उनमें जिज्ञासा जागृत होगी। यह विधि मुख्यतः मौखिक ही होती है।

कहानी विधि का महत्व

- एकाग्रता
- कल्पनाशक्ति का विकास

- अधिगम की तीव्रता

कहानी विधि मनोवैज्ञानिक होने के कारण शिक्षण क्षेत्र में सबसे लोकप्रिय है। इसे और भी प्रभावी बनाया जा सकता है यदि कुछ बातों को ध्यान में रखा जाय।

कहानी कथन स्तरानुकूल(standard appropriate) हो।

कहानी कथन की भाषा स्पष्ट सरल हो।

कहानी कथन में प्रसंगानुसार हाव-भाव, आरोह-अवरोह हो।

कहानी कथन के साथ पाठ्यसह सामग्री का उचित प्रयोग होना चाहिए।

कहानी कथन के बाद अधिगमकर्ता से बोधगम्यता के प्रश्न अवश्य पूछें जायें।

निरीक्षण एवं अवलोकन प्रविधि(Inspection and observation method)

यह तथ्य पूरी तरह स्थापित है कि देखी हुई घटना, वस्तु भूलती नहीं है। इसका प्रभाव हमारे मस्तिष्क पर स्थायी होता है। शिक्षण करते समय यदि छात्र को पाठ्य विषय में शामिल वस्तुओं, घटनाओं के अवलोकन एवं निरीक्षण का अवसर दिया जाय तो शिक्षण अधिगम प्रभावशाली होगा।

वास्तव में किसी वस्तु, स्थान, कार्य का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करना ही अवलोकन है। सभी विषयों में विशेषकर विज्ञान, कृषि तथा समाज विज्ञान के लिए यह अधिक उपयोगी है। समझना- परखना ही इस विधि का मूल तत्व है। समूह शिक्षण एवं उच्च स्तरों पर शोध कार्यों में इस विधि का प्रयोग प्रभावी होता है।

इस विधि से शिक्षण करते समय ध्यातव्य बिन्दु इस प्रकार हैं-

अवलोकन निरीक्षण की प्रक्रिया क्रमबद्ध हो ।

कब, कहाँ, किसका, क्या और कैसे अवलोकन करना है यह छात्रों को पता होना चाहिए।

उद्देश्य का पूर्व निर्धारण जरूरी है।

छात्रों को शिक्षक के मार्गदर्शन में ही अवलोकन निरीक्षण करना चाहिए।

अवलोकन निरीक्षण के बाद उसकी आख्या लेखन आवश्यक है।

उदाहरण विधि(Example method)

किसी कठिन और गूढ़ तथ्य, घटना, वस्तु को, सामग्री, प्रसंगो, अनुभवों के प्रयोग द्वारा व्यक्त करना उदाहरण है। जैसे- सरदार भगत सिंह की वीरता, साहस, बलिदान का उदाहरण देकर बच्चों में राष्ट्रिय भावना का विकास किया जा सकता है।

एस0 के कोचर- उदाहरण का अभिप्राय प्रतिमान, चित्र तथा चार्ट आदि वस्तुओं से है, जो क्लिष्ट विचारों का वर्णन करते है और उसकी प्रक्रिया में उन पर विशेष प्रकाश डालकर उन्हें आसान बनाते हैं। ये सीखने वालों की भावनाओं, कल्पनाओं को प्रेरित करते हैं, जिससे उनके विचार स्पष्ट होते हैं और वह सही ज्ञान ग्रहण करने योग्य बनते हैं।"

उदाहरण विधि का प्रयोग कैसे करें -

- उदाहरण सरल व स्पष्ट भाषा में हो
- उदाहरणों में विविधता हो
- उदाहरण स्तरानुकूल हो
- पूर्वज्ञान से सम्बन्धित व रुचिकर हो
- सरल से कठिन, ज्ञात से अज्ञात की ओर उन्मुख हो।

खेल विधि (Play method)

खेल एक स्वभाविक प्रक्रिया है, इसी के द्वारा बालक अपने को मूल रूप में व्यक्त करता है।

हयूजेज एवं हयूजेज - वह विधि जो बालकों को उसी उत्साह से सीखने की क्षमता देती है जो उनमें स्वाभाविक रूप में पायी जाती है प्रायः क्रीडा विधि कहलाती है।

खेल-खेल में सीखो यह कथन मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को संकेत करता है। इस विधि ने परम्परागत शिक्षण को नवीन दिशा दी है, जिससे शिक्षण ज्यादा रुचिपूर्ण हो गया है। **रायबर्न** ने इसके महत्व को बताते हुए कहा भी है-

यह विधि बालक की रचनात्मक शक्तियों को प्रोत्साहित करती है सामाजिक गुणों को विकसित करके समूह प्रवृत्ति का विकास करती है। शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक शक्तियों का विकास कर व्यक्तित्व को सन्तुलित करती हैं।

खेल विधि से शिक्षण करते समय हम परिवेश में उपलब्ध सामग्री प्रयोग करें और अभिनय को शामिल कर दें तो शिक्षण जीवन से सहसम्बन्धित होगा और रुचिकर हो जायेगा।

समूह चर्चा विधि (group discussion method)

किसी विषय पर एक से अधिक लोगों द्वारा चिन्तन और वार्तालाप करने को समूह चर्चा विधि कहते हैं। इस विधि से शिक्षण करने से सुनने, समझने का कौशल विकसित होता है।

महत्व

- सामाजिकता
- लोकतान्त्रिक
- ज्ञानवर्द्धन
- स्वतंत्रता

यह विधि अधिगम पर ज्यादा जोर देती है। समूह में चर्चा करने से एक ओर जहाँ खुलकर अभिव्यक्ति का अवसर होता है वहीं दूसरी ओर विषय भी स्पष्ट होता चलता है। इस विधि में शिक्षक-शिक्षार्थी दोनों की समान रूप से सहभागिता एवं सक्रियता रहती है। कक्षागत अनुशासन बना रहता है और,तर्क आदि मानसिक संक्रियाओं का बारम्बार अभ्यास भी हो जाता है।

प्रयोगात्मक विधि(experiment method)

नाम से ही स्पष्ट है जिस विधि में प्रयोग करके सिखाया जाय वह शिक्षण की प्रयोगात्मक विधि कहलाती है। इस विधि का आधार वैज्ञानिकता एवं तार्किकता है। प्रयोग द्वारा शिक्षण करने से छात्र सक्रिय एवं एकाग्र रहते हैं और स्वयं करके सीखने का अवसर होने से अधिगम स्थायी होता है।

इस विधि में बालक की समस्त इन्द्रियां(Senses) सक्रिय होती हैं इसलिए सीखना सरल व सहज होता है।

प्रयोग विधि का उपयोग- किसी वस्तु के बारे में जानना हो तो क्या-क्या करेंगे-

- ✓ वस्तु देखने में कैसी है ?
- ✓ वस्तु का रंग कैसा हैं ?
- ✓ वस्तु का आकार कैसा है ?
- ✓ छूने पर वस्तु कैसी लगती है ?
- ✓ पटकने पर कैसी आवाज होती है ?
- ✓ वस्तु हल्की है या भारी है ?

SACHIN ACADEMY

वाद-विवाद प्रविधि(debate discussion method)

महिलाओं की व्यवसाय में आवश्यकता इस विषय पर एक पक्ष है- महिलाओं का व्यवसाय करना जरूरी है दूसरा पक्ष नहीं जरूरी है। जब किसी विषय पर चर्चा के लिए दो पक्ष होते है उनके अलग-अलग मत होते हैं और दोनों की चर्चा के बाद निष्कर्ष निकाला जाता है। इसी विधि को वाद-विवाद विधि कहते हैं।

महत्व

- अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता रहती है।
- प्रसंग / तथ्य को स्पष्ट करने में सहायता मिलती है।
- जिज्ञासायें शांत होती हैं, नवीन ज्ञान में वृद्धि होती है।
- मानसिक विकास के लिए उपयोगी है।
- माध्यमिक कक्षा से उच्च कक्षा के लिए महत्वपूर्ण है।
- सुनने, बोलने का कौशल विकसित होता है।

कार्यशाला प्रविधि(workshop method)

शिक्षक अपने शिक्षण में सफलता पाने के लिए विविध विधियों/प्रविधियों का प्रयोग करता है । कार्यशाला प्रविधि ऐसी ही एक प्रविधि है। इसकी सहायता से छात्रों में क्रियात्मक पक्षीय उच्च अधिगम को सुनिश्चित करने के लिए प्रयास किया जाता है। कार्यशाला शब्द का प्रयोग अभियांत्रिकी के क्षेत्र में अधिक किया जाता है, जैसे- रेल वर्कशाप, सड़क परिवहन कार्यशाला आदि, जहाँ पर रेल इंजन व बसों को निर्मित करने व उनकी मरम्मत की व्यवस्था होती है। कार्य करते हुए ही यहाँ पर कुछ सीखा जा सकता है। अतः इस प्रविधि में श्रम आधारित स्वयं सक्रिय रहते हुए व्यावहारिक क्रियाकलापों के अधिगम को महत्व दिया जाता है।

कार्यशाला का अर्थ

कार्यशाला वह प्रविधि है जिसमें छात्र वास्तविक रूप से सक्रिय रहकर कार्य करते हुए अपने व समूह के सदस्यों के अनुभवों के पारस्परिक आदान प्रदान के द्वारा किसी विषय की जानकारी प्राप्त करता है। चूँकि छात्र इसमें सक्रिय

प्रतिभाग करता है अतः प्राप्त ज्ञान स्थायी, विश्वसनीय व उपयोगी होता है। इस प्रविधि का प्रयोग छात्रों के क्रियात्मक पक्ष के विकास के लिए किया जाता है। इसमें प्रायोगिक कार्य द्वारा ज्ञानार्जन को अधिक महत्व दिया जाता है।

कार्यशाला की परिभाषा

डॉ0 प्रीतम सिंह के अनुसार- "कार्यशाला आमने-सामने का ऐसा प्राथमिक समूह है जिसमें सामाजिक अन्तः क्रिया अधिक नजदीक तथा प्रत्यक्ष होती है और यह सदस्यों पर अधिक सामाजिक नियन्त्रण रखती है।"

शिक्षा शब्दकोष के अनुसार- "कार्यशाला एक शैक्षणिक प्रविधि है, जिसमें समान रुचियों और समस्याओं से युक्त व्यक्ति उपयुक्त विशेषज्ञों के साथ प्रायः आवासिक और कई दिवसों की अवधि में आवश्यक सूचनाएं प्राप्त करने और समूह अध्ययन के माध्यम से समाधान निकालने के लिए मिलते हैं।"

उपर्युक्त आधार पर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कार्यशाला/कार्यगोष्ठी परम्परागत क्रियाकलापों से परे सर्वथा नवीन, रोचक व आनन्ददायी माहौल प्रस्तुत करती है। ऐसे माहौल में छात्र-छात्राएं स्वतन्त्र होकर अपनी रुचि से कार्य करते हैं। फलतः उनकी अन्तर्निहित क्षमताएं व मानसिक चिन्तन अपने वास्तविक रूप में हमारे सामने आते हैं।

कार्यशाला प्रविधि के उद्देश्य

ज्ञानात्मक उद्देश्य-

- शिक्षण सम्बन्धी समस्याओं का समाधान खोजना।
- किसी प्रकरण के व्यावहारिक पक्ष को समझना।
- शिक्षण उद्देश्यों एवं विधियों का निर्धारण करना तथा उनकी प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना।

क्रियात्मक उद्देश्य-

- शिक्षण की विशिष्ट क्षमताओं का विकास करना।
- समूह में कार्य करने व सहयोग की भावना का विकास करना।
- शिक्षण की प्रभावी विधियों/प्रविधियों का निर्धारण करना।
- शिक्षा व शिक्षण के नवीन उपागमों का प्रशिक्षण देना।
- शिक्षण कौशल का विकास व सुधार करना।

<u>कार्यशाला का क्षेत्र</u> -

शिक्षा के क्षेत्र में कार्यशाला प्रविधि बेहद उपयोगी है। इसका उपयोग शिक्षण में व्यापक रूप में किया जा सकता है। इसके क्षेत्र में निम्नलिखित कार्य सम्मिलित हैं-

- पाठ योजना के नवीन प्रारूप बनाने हेतु
- क्रियात्मक शोध के प्रयोग हेतु
- पाठयोजना में प्राप्त उद्देश्यों को व्यवहारगत परिवर्तनों के रूप में लिखने हेतु
- नवीन प्रकार की परीक्षाओं के प्रश्नों व प्रश्नपत्रों के निर्माण हेतु
- विविध प्रकार की प्रश्नावली के निर्माण हेतु

SACHIN ACADEMY

कार्यशाला में शिक्षण का क्रम-

- कार्यशाला में शिक्षण का क्रम निम्न प्रकार का होता है-
- प्रकरण / समस्या का चयन, प्रस्तुतीकरण व स्पष्टीकरण
- पाठ पर आधारित कार्य
- कार्य के विविध तौर तरीकों के प्रयोग का अभ्यास
- वास्तविक अनुभवों का आदान प्रदान
- सहभागियों के साथ कार्य
- कार्यों / तैयार सामग्री की जाँच / परीक्षण / निरीक्षण
- निष्कर्ष (पाठ से सम्बन्धित तथ्यों का ज्ञान)

शिक्षण में कार्यशाला का महत्व:-

शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यक्तित्व का सर्वांगीण व सन्तुलित विकास करना है। अतः शिक्षक का प्रमुख दायित्व यह है वह विद्यालय में ऐसा वातावरण तैयार करे जिसमें प्रत्येक बच्चा स्वयं सीखने में रुचि ले व तत्पर रहे। सीखने का ऐसा वातावरण बनाने में कार्यशाला प्रविधि अत्यन्त उपयोगी है। इसमें वास्तविक परिस्थितियों में छात्र समस्या समाधान का प्रयास करते हैं और स्वयं करते हुए सीखते हैं। सीखने के लिए वह अध्यापक पर निर्भर नहीं रहते और समूह के सदस्यों के साथ मिल-जुलकर कार्य करते हुए नवीन अनुभव प्राप्त करते हैं।

भ्रमण विधि(excursion method)

भ्रमण से आशय है- घूमना, स्पष्ट है इस विधि में स्थलों, वस्तुओं का ज्ञान घूम-घूम कर प्राप्त किया जाता है। इस विधि को शैक्षिक भ्रमण भी कहा जाता है। भ्रमण के पश्चात सीखी गई बातों का लेखन अवश्य करवाना चाहिए ताकि ज्ञान स्थायी रह सकें।

भ्रमण विधि से-

- सीखना रुचिपूर्ण लगता है।
- सामाजिक भावना का विकास होता है।
- समस्त इन्द्रियां क्रियाशील रहती है।
- विभिन्न संस्कृतियों का ज्ञान सहजता से हो जाता हैं
- सीखने में स्वतन्त्रता रहती है।

शिक्षण की नवीन विधाएँ/उपागम(New methods/approaches of teaching)-

शिक्षण की नवीन विधाओं या उपागम की अवधारणा

शिक्षण एक सामाजिक प्रक्रिया है, जिस पर प्रत्येक देश की शासन प्रणाली, सामाजिक दर्शन,सामाजिक परिस्थितियों तथा मूल्यों एवं संस्कृति का प्रभाव पड़ता है। प्रजातन्त्र शासन प्रणाली(democratic system of government) के कारण भारत में जनता की इच्छा को वरीयता देते हुए उसका सम्मान किया जाता है। इस प्रकार की शिक्षण प्रणाली में शिक्षक और छात्र दोनों सक्रिय रहते हैं और उनके मध्य शाब्दिक और अशाब्दिक अन्तः क्रिया चलती रहती है।

शिक्षक का उद्देश्य बालक को अधिक से अधिक सिखाना है। वह बालक को शिक्षण के द्वारा सिखाता है। शिक्षक बालक को नवीन तथ्यों की सूचना देता है। छात्रों का शिक्षण करते समय अध्यापक अपनी सभी क्षमताओं का उपयोग करता है। अध्यापक अपने पूर्ण मनोयोग, अपने पूर्व अनुभव, दक्षताओं के साथ विभिन्न प्रविधियों, विधियों तथा विधाओं का उपयोग करता है। अध्यापक द्वारा प्रयोग में लायी गयी विधाएँ या उपागम उसकी शिक्षण कला को सुगम बनाते हैं।

उद्देश्य-

- प्रशिक्षुओं को शिक्षण की नवीन विधाओं उपागम की जानकारी देना।
- बच्चों के सर्वांगीण विकास की जानकारियों से अवगत कराना।
- गतिविधि आधारित शिक्षण का ज्ञान देना।
- प्रशिक्षुओं को भावी शिक्षक के रूप में कक्षा में बच्चों को स्वयं करके सीखने की प्रवृत्ति का विकास करना।
- रुचिपूर्ण शिक्षण के द्वारा खेल-खेल में बच्चों को पढ़ाने की विधाओं से अवगत कराना।
- उपचारात्मक एवं बहुकक्षा शिक्षण के क्रियान्वयन के बारे में बताना।

बालकेन्द्रित शिक्षण उपागम(Child-centred teaching approach)का अर्थ-

बालकेन्द्रित शिक्षण अर्थात् जिस शिक्षण का मुख्य केन्द्र बिन्दु बालक होता है। बालक की रुचियों,प्रवृत्तियों तथा क्षमताओं को ध्यान में रखकर शिक्षण प्रदान किया जाता है। इसमें बालक का व्यक्तिगत निरीक्षण कर उसकी दैनिक

कठिनाइयों को दूर करने के साथ ही साथ उसे स्वावलम्बी बनाकर उसमें स्वतन्त्रता की भावना उत्पन्न की जाती है। इस शिक्षण उपागम में बालक चुने हुए साधनों में से अपनी इच्छानुसार किसी भी साधन का चुनाव कर सकता है तथा उस साधन के साथ संतोष प्राप्त होने तक कार्य कर सकता है। इसके द्वारा वह मानसिक सन्तोष और शान्ति का अनुभव करता है। इस अनुभव से बालक का शारीरिक एवं मानसिक उत्साह उत्पन्न होने में सहायता मिलती है। बालक ज्यों ही क्रियाशील होता है, वह कुछ कार्य करने में आनन्द अनुभव करता है वह करके ही कुछ सीखता है। बालकेन्द्रित शिक्षा पर जोर देते हुए किसी विद्वान ने कहा है कि आज का बालक भावी राष्ट्र निर्माता है।

उद्देश्य-

- बालक का चहुँमुखी(all round) विकास करने की प्रवृत्ति को विकसित करना।
- स्वयं करके सीखने की प्रवृत्ति विकसित करना।
- आत्मविश्वास जाग्रत करने की भावना का विकास करना।
- चिन्तन, मनन जिज्ञासा जैसी प्रवृत्तियों का विकास करना।
- सहयोग की भावना विकसित करना।
- स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की प्रवृत्ति का विकास करना।
- पुनर्बलन(Reinforcement) द्वारा शिक्षण को प्रभावी बनाने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना।
- पढ़ाने की क्रिया पर जोर न देकर सिखाने की क्रिया पर जोर देना।
- शारीरिक दण्ड प्रक्रिया को बहिष्कृत करना।
- पषण, सूचना, संचालन तथा निष्कर्ष निकालने की दक्षता का विकास करना।
- प्रशिक्षुओं को बालकों के सहयोगी एवं मार्गदर्शक के रूप में तैयार करना।

शिक्षक केन्द्रित शिक्षा तथा बालकेन्द्रित शिक्षा

शिक्षक केन्द्रित शिक्षा(teacher centered education) -

- शिक्षक का निर्देश और निर्णय सर्वोपरि
- शिक्षक का मार्गदर्शन और निरीक्षण
- निष्क्रियभाव से अधिगम सीखना
- चाहारदीवारी के अन्दर अधिगम
- प्रदत्त के रूप में ज्ञान शिक्षक से ज्ञान प्राप्त करना
- अनुशासनात्मक दृष्टिकोण
- रेखिक अनुभव

बालकेन्द्रित शिक्षा(child centered education) -

- बालक की स्वायत्ता व स्वतन्त्रता
- सहयोग द्वारा शिक्षार्थी को प्रोत्साहन
- सीखने में विद्यार्थी की सक्रिय भागीदारी
- विस्तृत सामाजिक संदर्भो में सीखना या चाहारदीवारी के बाहर भी सीखना।
- ज्ञान निर्मित होता है। 1⁄4 स्वयं करके सीखना1⁄2
- बहुअनुशासनात्मक शैक्षणिक बल
- बहुविध अनुभव

बालकेन्द्रित शिक्षा में-

SACHIN ACADEMY

- शिक्षक बच्चों से मित्रवत् व्यवहार करते हैं।
- बच्चों को सिखाने में मार्गदर्शक के रूप में भूमिका का निर्वहन करते हैं।
- खेल-खेल में तथा गतिविधियों के माध्यम से बच्चों को ज्ञान देते हैं।
- बार-बार अभ्यास कार्य के द्वारा बच्चों की कठिनाइयों को दूर करते हैं।
- बच्चों को अधिक से अधिक अभिव्यक्ति का अवसर देते हैं।
- बच्चों को आनन्द की अनुभूति कराते हैं।
- बच्चों को उचित नाम से सम्बोधित करते हैं।
- शिक्षण अधिगम सामग्री को अधिक से अधिक प्रयोग करते हैं।
- बच्चों को विद्यालय की विभिन्न गतिविधियो में अधिक से अधिक अवसर देते है।

बालकेन्द्रित शिक्षा का महत्त्व -

- बालक प्रधान शिक्षण।
- सरल और रुचिपूर्ण शिक्षण।
- आत्माभिव्यक्ति के अवसर।
- ज्ञानेन्द्रिय प्रशिक्षण पर बल।
- व्यावहारिक और सामाजिक ज्ञान।
- क्रियाशीलता पर आधारित शिक्षा।
- स्वयं करके सीखने पर बल।

बालकेन्द्रित शिक्षण में शिक्षक की भूमिका-

बालकेन्द्रित शिक्षण में शिक्षक बालकों का सहयोगी, सेवक तथा मार्गदर्शक के रूप में होता है। वह बालकों का सभी प्रकार से मार्गदर्शन करता है और विभिन्न क्रियाकलापों को क्रियान्वित करने में सहायता करता है। शिक्षक जब कक्षा में पढ़ाने जाते हैं तो शिक्षक के सामने बालक होता है और विषयवस्तु होती है। शिक्षण द्वारा शिक्षक अपने और विषयवस्तु के मध्य एक संबंध बनाता है। यही सम्बन्ध बच्चे के सर्वांगीण विकास में सहायता देकर उसे भविष्य में समाज का योग्य और सृजनशील नागरिक बनाने का काम करता है। चूँकि बालक को शिक्षण अधिगम का सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक बनाया है इसलिए एक सफल शिक्षक के लिए आवश्यक है कि अपने विषय के साथ-साथ वह उस बच्चे को भली-भाँति जानें जिसे शिक्षित करना है। यह कहना पूर्णतया सत्य है-

"शिक्षक वह धुरी है जिस पर बाल-केन्द्रित शिक्षण कार्यरत है।" बालकेन्द्रित शिक्षण में शिक्षक माली के सदृश पौधों के समान बालकों का पोषण करके उनका शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक विकास करता है। शिक्षक ही बालक को पशु प्रवृत्ति से निकालकर मानवीय प्रवृत्ति की ओर उन्मुख करता है।

बालकेन्द्रित शिक्षण एवं बालकेन्द्रित उपागम में भेद-

बालकेन्द्रित शिक्षण-

बाल केन्द्रित शिक्षण बालक की रुचियों, प्रवृत्तियों तथा क्षमताओं को ध्यान में रखकर आयोजित किया जाता है। इस शिक्षण के द्वारा बालक के व्यक्तित्व का पूर्ण सम्मान करते हुए उसके संर्वागीण विकास का प्रयास किया जाता है।

पाठ्यक्रम, पाठ्यसामग्री, समय, स्थान तथा मूल्यांकन पद्धतियाँ बच्चों के अनुकूल रखी जाती हैं।

बालकेन्द्रित उपागम-

बालकेन्द्रित उपागम एक दृष्टिकोण है, जिसके द्वारा बालक को शैक्षणिक कार्यक्रम का मुख्य आधार बनाया गया है, शिक्षक को नहीं। यह शिक्षण प्रक्रिया का विश्लेषण करने की एक तर्कपूर्ण विधि है जो बालकेन्द्रित शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाती है। उपागम में बालकेन्द्रित शिक्षण के सभी पक्षों एवं अंगों का समावेश रहता है जैसे- छात्र, शिक्षक, विषयवस्तु, शैक्षणिक सामग्री, शिक्षण प्रणाली, शिक्षण प्रविधि, भौतिक परिवेश एवं शैक्षिक उद्देश्यों का मूल्यांकन।

क्रिया/गतिविधि आधारित शिक्षण(activity based teaching)

शिक्षण पद्धति को अधिक से अधिक गतिविधि आधारित बनाने, बच्चों में रुचि बनाये रखने एवं उनमें तार्किक ढंग से समझ विकसित करने के लिए शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में शिक्षण की नवीन विधाएं महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही हैं। बच्चों के व्यवहार, व्यक्तित्व, विद्यालय एवं कक्षा-कक्ष में उसकी सहभागिता, पाठ्येत्तर गतिविधियों में सहभागिता, स्कूल में नियमितता एवं स्वास्थ्य व स्वच्छता के प्रति जागरुकता की भावना विकसित हो रही है। इसके विपरीत कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि बच्चे विद्यालय के अरुचिकर वातावरण, शिक्षण अधिगम की जटिल विधि, उपेक्षित व्यवहार आदि के कारण

विद्यालय छोड़ देते हैं। आपने कभी यह जानने का प्रयास किया कि ऐसा क्यों होता हैं? हमें इसके कारणों को खोजकर अपने शिक्षण कार्य/प्रक्रिया में परम्परागत तरीके से हटकर नये ढंग से शिक्षण कार्य करना होगा। रूसो का कथन है कि "यदि आप अपने छात्र की बुद्धि का विकास करना चाहते हैं तो उस शक्ति का विकास करना चाहिए, जिसे इसको नियन्त्रित करना है। उसको बुद्धिमान और तर्कपूर्ण बनाने के लिए उसे स्वस्थ बनाना होगा।"

उद्देश्य

- कक्षा में गतिविधि आधारित शिक्षण का प्रयोग कराना।
- शैक्षिक गतिविधि/क्रियाकलापों से परिचित कराना।
- गतिविधि के द्वारा अनेक दक्षताओं का विकास करना।
- शिक्षण को रोचक व प्रभावी बनाना।
- खेल-खेल में शिक्षण के द्वारा सिखाना।
- बच्चों की रुचियों, मनोवृत्तियों(attitudes) व स्तर को समझते हुए शिक्षण करना।
- कक्षा में सुचारू संचालनमें सहायक।
- बच्चों में सक्रियता का विकास करना।

क्रिया/गतिविधि आधारित शिक्षण का अर्थ(Meaning of activity based learning) -

क्रियापरक विधि का अर्थ है- छात्र का अपनी स्वयं की क्रिया के द्वारा ज्ञान प्राप्त करना। छात्र की क्रिया से तात्पर्य है कि जिस क्रिया को छात्र किसी उद्देश्य से पूर्ण करता है। उसको पूर्ण करने में उसका शरीर और मस्तिष्क

दोनों ही क्रियाशील रहते हैं। इस आधार पर ज्ञात होता है कि छात्र की क्रियाएँ दो प्रकार की होती हैं- शारीरिक तथा मानसिक। आत्मक्रिया एवं आत्माभिव्यक्ति इसके प्रमुख अंग माने जाते हैं। उन सभी क्रियाओं के द्वारा जिनमें बच्चे रुचिपूर्वक, जिज्ञासा, कौतूहल, लगन तथा मनोयोग(psychology) से सक्रिया रहकर कार्य करते हुए सीखते हैं, गतिविधि कहलाती है। गतिविधि से तात्पर्य उन सभी क्रियाओं से है जिनकी सहायता से शिक्षक के द्वारा विषयवस्तु को कक्षा में रोचक एवं प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया जाये तथा बच्चे उसमें रुचि लें।

परिभाषा

शोइनचेन के अनुसार- "क्रियापरक विधि का प्रयोग उस समय किया जाता है, जब किसी विषय के शिक्षण में लक्ष्यों को आगे बढ़ाने के लिए छात्रों के द्वारा किसी प्रकार की क्रिया की जाती है।"

गतिविधि का श्रेणीकरण

शारीरिक गतिविधि- कदमताल, पी0टी0, हाथ ऊपर नीचे कराना, उछल कूद आदि।

मानसिक गतिविधि- चिन्तन, मनन, तर्क, वार्तालाप, वर्गपहेली, पहेली पूछना, लेखन करना, भाषण देना आदि।

शारीरिक एवं मानसिक दोनों- पशु/पक्षी का नाम लेते हुए आगे या पीछे कूदना, वर्गकूद, अक्षरकूछ आदि।

गतिविधियाँ कराने के ढंग / तरीके

SACHIN ACADEMY

शिक्षक तीन प्रकार की गतिविधियों यथा ज्ञान प्राप्त करने वाली, ज्ञान व्यक्त करने वाली, अनुभव करने वाली के द्वारा रोचकतापूर्ण वातावरण का सृजन करके सीखने की क्रिया को सहजता प्रदान कर सकता है। ये गतिविधियां लिखित और मौखिक, एकल और सामूहिक, सामग्री के साथ या सामग्री के बिना किसी भी रूप में करायी जा सकती है । अभिनय, कहानी, नाटक, कविता, हाव-भाव, भ्रमण, अवलोकन प्रोजेक्ट कार्य आदि गतिविधियों की श्रेणी में आते हैं।

गतिविधि कैसे करें ?

हम गतिविधि कैसे करें या कक्षा में कैसे कराएं यह प्रश्न सभी के मन में निरन्तर आता रहता है।

क्योंकि कुछ लोगों में किसी भी बात को अभिनय या हाव-भाव से कहने की कला जन्मजात होती है जबकि कुछ लोग सीख कर सिखाने का प्रयास करते हैं। गतिविधि कराने में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि आत्मविश्वास के साथ-साथ। विषय की स्पष्ट समझ होना जरूरी है तभी हम कोई गतिविधि विषय से जोड़ते हुए करा सकते हैं। कोई गतिविधि आयोजित करने से पहले गतिविधि के दौरान बैठक व्यवस्था क्या रहेगी, वितरण कैसे होगा, समूह की क्या जिम्मेदारियाँ रहेंगी, इन बातों पर निर्णय कर लेना होगा। गतिविधि में सीखने का क्रम, कहाँ शुरू करना, कहाँ विषय को समेटना, तथ्य का स्पष्ट सम्प्रेषण, सामग्री की उपलब्धता, प्रयोग और विभिन्न विषयों को जोड़ने की कला ही सीखने-सिखाने का आधार बन जाती है। गतिविधि में क्या सिखाना है यह पहले तय करके गतिविधि का निर्माण किया जा सकता है। गतिविधि को

रोचकता से जोड़ना उसके प्रभाव को बढ़ा देता है लेकिन रोचकता अनायास आनी चाहिए, प्रयास पूर्वक नहीं।

गतिविधियों से बच्चे स्वाभाविक रूप से सीखते हैं। इन्हें सिर्फ खेलने के वादन' तक सीमित न करें बल्कि पाठ्य-पुस्तकों, पाठ्यवस्तु पर आधारित करते हुए गतिविधियों द्वारा बच्चों को सीखने का अवसर दें। अनेक दक्षताएं एक ही गतिविधि द्वारा प्राप्त की जा सकती है और एक ही दक्षता को प्राप्त करने के लिए अनेक गतिविधियों का प्रयोग किया जा सकता है।

गतिविधि आधारित शिक्षण विधि की विशेषताएँ-

गतिविधि आधारित शिक्षण विधि की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

- यह विधि छात्र को स्वयं करके सीखने का अवसर प्रदान करती है, जिससे छात्र ज्ञानार्जन करता है।
- यह विधि छात्र को कार्य करने में इतना मग्न कर देती है कि उसे ज्ञानार्जन करते समय थकान का अनुभव नहीं होता है।
- यह विधि शिक्षक-केन्द्रित न होकर बाल-केन्द्रित होती है।
- इस विधि के द्वारा छात्र क्रियाशील होकर पाठ्य विषय में रुचि का अनुभव करता है।
- यह विधि छात्रों को अनेक वस्तुओं को बनाने का प्रशिक्षण प्रदान कर उनकी व्यावसायिक कुशलता को बढ़ाती है।
- यह विधि पाठ्य-पुस्तकों को महत्त्व न देकर वस्तुओं के संग्रह, पर्यटन, अवलोकन और परीक्षण को महत्व देती है।

रुचिपूर्ण/आनन्ददायी शिक्षण(Interest based teaching)

रुचिपूर्ण शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा बालक को प्रत्यक्ष ढंग से कुछ सिखाया नहीं जाता वरन् उसमें ऐसी रुचि एवं जिज्ञासा उत्पन्न की जाती है कि वह स्वयं सीखने के लिए प्रेरित हो जाता है क्योंकि विद्यालय का वातावरण घर के वातावरण से अधिक रुचिकर एवं प्रभावकारी होता है। मात्र किताबी ज्ञान जीवन के संघर्षों का सफलतापूर्वक सामना करने में पूर्णतः सफल नहीं हो सकता है। आज के बच्चे देश के भावी नागरिक हैं, अतः उनमें कुछ ऐसे गुणों का विकास आवश्यक है जिससे स्वयं लाभान्वित होने के साथ-साथ वे समाज तथा राष्टं को भी लाभ पहुँचा सकें।

रुचिपूर्ण शिक्षण का अर्थ -

रुचिपूर्ण शिक्षण से आशय है शिक्षण की ऐसी विधा से है जो बालक की अभिरुचियों को ध्यान मे रखते हुए उनके सर्वांगीण विकास हेतु विकसित की गई है। प्रत्येक बालक की एक ही रुचि न होकर अलग-अलग रुचि होती है। उदाहरण के लिए एक बालक पढ़ने में रुचि रखता है तो दूसरा खेलने में और तीसरा संगीत सुनने में। इस प्रकार तीनों बच्चों को अलग-अलग बातों से लगाव अर्थात रुचि है। सामान्यतया रुचि एक मानसिक प्रक्रिया है, जिसके आधार पर कोई वस्तु अच्छी या खराब लगती है। अतः शिक्षक को उनकी रुचि के अनुकूल स्थूल पदार्थों, चित्रों, चार्टों, मॉडल आदि का प्रयोग पाठ पढ़ाते समय अवश्य करना चाहिए। बालक जिज्ञासु प्रवृत्ति के होते हैं। वे अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं। उनकी इस

प्रवृत्ति को जागृत रखने और तृप्त करने का दायित्व शिक्षक का ही है। रुचिपूर्ण शिक्षण एक समयबद्ध कार्यक्रम तथा सुविचारित रणनीति हैं यह बालकों को शिक्षा देने हेतु आकर्षक एवं बालकेन्द्रित प्रणाली है, जिसमें बालकों को आनन्दित करने वाले क्रियाकलाप एवं विद्यालय में छात्र के प्रति शिक्षक का हेय रहित, मित्रवत् तथा आत्मीय व्यवहार है। यह गीतों, कहानियों तथा खेलों द्वारा सरल गतिविधि प्रधान बालकेन्द्रित शिक्षण है। यह एक ऐसी विधा है जो शिक्षण को रोचक एवं प्रभावी बनाकर शिक्षा के सार्वजनीकरण के लक्ष्य प्राप्ति में सहायक होगी।

उद्देश्य-

रुचिपूर्ण शिक्षण के प्रमुख उद्देश्य है-

- बालकों का नामांकन, ठहराव तथा गुणात्मक शिक्षा की सम्प्राप्ति।
- विद्यालय का बाह्य एवं आन्तरिक सौन्दर्यीकरण(beautification) करके उसे एक आनन्दमयी केन्द्र के रूप में विकसित करना।
- शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को क्रियाकलाप आधारित बनाकर प्रत्येक बालक की सहभागिता सुनिश्चित करना।
- शिक्षक को एक मित्र एवं सहयोगी के रूप में कल्पित करना।
- शिक्षकों की आपसी समझ और सहयोग की भावना को प्रोत्साहित कर उनकी बौद्धिक, सृजनात्मक एवं कलात्मक दक्षताओं का समुचित उपयोग करना।
- समुदाय का सहयोग प्राप्त करना।
- निर्धारित दक्षताओं सम्बन्धी कौशलों का विकास करके न्यूनतम अधिगम स्तर को प्राप्त करना।
- ह्रास एवं अवरोध को रोकना।

- विद्यालय का वातावरण सरल, आकर्षक, शैक्षिक एवं सौन्दर्यपूर्ण बनाना।

रुचिपूर्ण शिक्षण की विशेषताएँ -

रुचिपूर्ण शिक्षा सीखने-सिखाने की कार्यशैली से जो बच्चों को रुचि, आनन्द, रुझान आदि को ध्यान में रखते हुए खेल विधि, गीत, रोचक क्रियाओं आदि के द्वारा दक्षताओं का विकास किया जाता है। जब दक्षताओं का विकास होगा तो अधिगम की सम्प्राप्ति अवश्य होगी।

रुचिपूर्ण शिक्षण की निम्नलिखित विशेषताएँ है-

- बच्चों की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास करके उनका सर्वांगीण विकास करना।
- बच्चों हेतु रुचिपूर्ण एवं आनन्ददायी शिक्षण पद्धति का प्रयोग करना।
- करके सीखने का रुचिपूर्ण तरीका अपनाना।
- उबाऊ और अनाकर्षक वातावरण को हटाकर रोचक प्रस्तुति करना।
- सीमित संसाधनों से परिवेश को आकर्षक बनाने का प्रयास कराना।

रुचिपूर्ण शिक्षण- प्रशिक्षण प्रक्रिया

रुचिपूर्ण शिक्षण प्रशिक्षण प्रक्रिया एक सुनियोजित प्रक्रिया है जो बच्चों को रुचिकर एवं आनन्ददायी वातावरण का सृजन करके उनकी सहभागिता के द्वारा उन्हें सीखने हेतु प्रेरित करती है। रुचिपूर्ण कार्यक्रम के सफल क्रियान्वयन हेतु शिक्षा निदेशालय बेसिक निशातगंज, लखनऊ के अधीन राज्य स्तरीय रुचिपूर्ण शिक्षा प्रकोष्ठ की स्थापना की गई है, जो विभागीय अधिकारियों, यूनीसेफ, जनपदीय स्टाक फोर्स, राइट तथा प्राथमिक शिक्षक संघ के साथ

कार्यक्रमों को संचालित करता है। यूनीसेफ द्वारा प्रदत्त वित्तीय व्यवस्था भी प्रकोष्ठ के माध्यम से की जाती है। जनपद स्तर पर जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, सहायक बेसिक शिक्षा अधिकारी तथा जिला प्राथमिक शिक्षक संघ इस कार्यक्रम का संचालन करते हैं। विद्यालय स्तर पर ग्राम प्रधान, ग्राम शिक्षा समिति, अभिभावक एवं जन प्रतिनिधि की सहभागिता एवं सहयोग लिया जाता है।

रुचिपूर्ण शिक्षण में सीखने -सिखाने हेतु किए जाने वाले क्रियाकलाप-

बच्चों के सीखने में क्रियाकलापों का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान होता है। जब हम किसी विशेष दक्षता के लिए कोई गतिविधि करते हैं तो उसका बच्चों पर काफी असर पड़ता है तथा उन्हें जो अधिगम होता है वह स्थायी होता हैं क्योंकि वे स्वयं करके सीखते हैं। छात्र जिन विधाओं व क्रियाकलापों के द्वारा सहजता से सीख लेता है वे निम्न हैं-

- गीत/कविता
- कहानी चित्रण
- खेल
- अभिनय/नाटक
- भ्रमण/निरीक्षण
- पहेली
- वार्तालाप
- पर्यावरण में पायी जाने वाली वस्तुओं का उपयोग।

SACHIN ACADEMY

सहभागी शिक्षण(Collaborative teaching)

प्राचीन काल से ही शिक्षा में शिक्षण प्रक्रिया का सम्बन्ध दो पक्षों से रहा है। इसमें प्रथम पक्ष शिक्षा प्रदान करने वाला होता है। जिसे गुरू के नाम से जानते हैं। वर्तमान में उसको शिक्षक के नाम से जानते हैं। दूसरा पक्ष शिक्षा ग्रहण करने वाला होता था जिसे प्राचीन काल में शिष्य तथा वर्तमान समय में छात्र के नाम से जानते हैं। इन दोनों पक्षों के मध्य ही शिक्षण व्यवस्था के ताने बाने को बुना जाता था। दोनों ही शिक्षण प्रक्रिया के लिए अनिवार्य माने जाते थे।

वर्तमान समय में इस प्रक्रिया को सहभागी शिक्षण के रूप में जाना गया अर्थात् सहभागी शिक्षा की अवधारणा का उदय हुआ जिसमें यह निश्चित किया गया कि शिक्षण प्रक्रिया को उपयोगी एवं प्रभावशाली बनाने के लिए शिक्षक एवं छात्र दोनों की ही सहभागिता आवश्यक है। इसके विपरीत स्थिति में शिक्षण प्रक्रिया प्रभावशाली सिद्ध नहीं होगी।

SACHIN ACADEMY

सहभागी शिक्षण का अर्थ

सहभागी शिक्षण का सामान्य अर्थ शिक्षक एवं शिक्षार्थी की सहभागिता से लिया जाता है। शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षार्थी भी उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि शिक्षक। उदाहरणार्थ- एक शिक्षक कक्षा में पूर्ण तल्लीनता से शिक्षण कार्य कर रहा है। वह छात्रों से प्रश्न पूछकर, श्यामपट्ट पर लेखन करवाकर, पाठ को पढ़वाकर एवं पृष्ठ पोषण प्रदान करके उनका सहयोग प्राप्त कर रहा है। इस प्रकार दोनों पक्ष शिक्षण प्रक्रिया में एक-दूसरे को सहयोग दे रहे हैं। शिक्षक

प्रश्न पूछता है तो छात्र उत्तर देता है । शिक्षक निर्देश देता है, छात्र पालन करता है। शिक्षक पाठ को अच्छी तरह से समझाने के लिए गतिविधि जैसे- फ्लैशकार्ड, चार्ट पेपर पर चित्रित चित्र, श्यामपट्ट पर अभ्यास कार्य, नाटक मंचन आदि कराकर अपने शिक्षण को रोचक व सहभागिता से युक्त बनाता है।

उद्देश्य -

- शिक्षक एवं छात्र दोनों को ही क्रियाशील बनाना।
- छात्रों को स्थायी ज्ञान प्रदान करना।
- कक्षा के वातावरण को रुचिकर एवं आनन्ददायी बनाना।
- विषयवस्तु की प्रस्तुति को सरल एवं बोधगम्य बनाना।
- छात्रों का चहुँमुखी विकास करना।
- छात्रों की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास करना।
- छात्रों में चिन्तन, मनन, कल्पना, तर्क, जिज्ञासा आदि प्रवृत्तियों का विकास करना।
- सहयोग एवं सहकारिता की भावना विकसित करना।

सहभागी शिक्षण हेतु किए जाने वाले क्रियाकलाप-

- प्रस्तुतीकरण के पश्चात् कठिन शब्दों का उच्चारणाभ्यास कराना।
- फ्लैशकार्डों को दिखाकर, चार्ट पट्टिका को दिखाकर व्याकरणात्मक त्रुटियों को उनकी सहभागिता के द्वारा दूर करना।
- छात्रों के द्वारा अपने अनुभव की अभिव्यक्ति कराना।

- श्यामपट्ट पर शब्दों का मिलान कराना, चित्र बनवाना आदि।
- समूह में बांटकर विषयगत जानकारी प्राप्त करना।
- कहानी, नाटक का मंचन छात्रों की सहभागिता से यथा- छात्रों को कहानी, नाटक का पात्र बनाकर व पात्रों में संवाद बुलवाकर।

दक्षता आधारित शिक्षण(Efficiency based teaching)-

वर्तमान युग प्रतिस्पद्र्धा(competition) एवं प्रतियोगिता का युग है। बालक को ज्ञान प्राप्ति के साथ ही साथ समाज में विशिष्ट स्थान बनाने के लिए किसी क्षेत्र में विशिष्ट दक्षताएं प्राप्त करनी होती है । दक्षताएं- भौतिक एवं मानसिक दोनों क्षेत्रों में हो सकती हैं। छात्र को चिन्तन, समस्या समाधान, शब्द कौशल, कविता लेखन, गणितीय गणनाएं, वाचन भाषण, नृत्य तथा संगीत आदि में दक्षता प्राप्त करनी चाहिए अथवा कम्प्यूटर, बागवानी, डिजायनिंग, भवन निर्माण, कारपेन्टरी, टंकण(Typing) तथा चित्रकला आशुलिपि जैसे कार्यों में दक्षता प्राप्त करनी चाहिए क्योंकि दक्षता प्राप्त करने के बाद ही वह समाज में रहते हुए सुखी जीवन व्यतीत कर सकता है। यदि व्यक्ति के पास कोई दक्षता नहीं है तो उसका व्यक्तित्व एक पक्षीय बन कर रह जाता है।

दक्षता आधारित शिक्षण का अर्थ दक्षता आधारित शिक्षण से तात्पर्य है दक्ष अध्यापकों द्वारा ऐसा शिक्षण जो छात्रों को ज्ञान प्राप्ति में दक्ष बना सकें । दक्षताओं का विकास तभी सम्भव हैं जब शिक्षार्थी किसी ज्ञान की इकाई को इस सीमा तक सीख लें कि वह उसके जीवन का अंग बन जाए। अध्यापन विज्ञान की शब्दावली में इसे मास्टरी लर्निंग अथवा ऑप्टिमम लर्निंग कहा जाता है। बहुत से विद्वान अधिगम के 'आटोमाइजेशन' पर बल देते है।

जिसका अर्थ है कि ज्ञान की इकाई, विचार और क्रिया के मार्ग से होती हुई बच्चे के सहज जीवनचर्या का अंग बन जाए।

भाषा सम्बन्धी दक्षताएं हैं -

- सुनना
- बोलना
- पढ़ना
- लिखना

उद्देश्य दक्षता आधारित शिक्षण के उद्देश्य -

- छात्रों को दक्ष बनाना
- प्रतिस्पद्र्धा की भावना विकसित करना
- ज्ञान को स्थायित्व प्रदान करना
- शिक्षण के प्रति रुचि विकसित करना
- सहयोग की भावना विकसित करना।

दक्षता आधारित शिक्षण विधि के सोपान

दक्षता आधारित शिक्षण विधि के निम्नलिखित सोपान हैं-

- पूर्व तैयारी- उद्देश्य निर्धारण, सहायक सामग्री।
- विषयवस्तु का प्रस्तुतीकरण।
- नियम-निर्णय का समन्वयीकरण, सूचीकरण।
- अभ्यास

- अभ्यास कार्य के मध्य की गयी त्रुटियों का शुद्धिकरण।
- प्रयोग।

उपचारात्मक शिक्षण(Remedial teaching)-

उपचारात्मक शिक्षण वास्तव में छात्र ने जो कुछ सीखा है उसको ध्यान में रखकर उसकी उन्नति प्राप्त करने के लिए होता है। इसके अन्तर्गत शिक्षक छात्र को अपनी कमजोरियों के क्षेत्रों में अधिक योग्यता की दिशा में अग्रसर करता है।

शिक्षा का उद्देश्य मात्र ज्ञान प्रदान करना ही नहीं है बल्कि बच्चों का सर्वांगीण विकास करना है। वर्तमान बालकेन्द्रित शिक्षा व शिक्षण का भी एकमात्र लक्ष्य यही है कि बालकों के व्यवहार में अभीष्ट परिवर्तन परिलक्षित हो। इसके लिए आवश्यक है कि हमारा पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें, शिक्षण विधियाँ, क्रियाकलाप, शिक्षण अधिगम सामग्री आदि सभी कुछ बच्चों की रुचि, आयु व समझ के अनुरूप हों। विद्यालय में आने वाले बच्चे रुचि, आयु, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक व आर्थिक स्तर, क्षमता व दृष्टिकोण में एक दूसरे से सर्वथा भिन्न होते हैं। इस कारण से किसी कक्षा व विषय में उनके सीखने का स्तर भी एक जैसा नहीं रहता है। कुछ बच्चे शीघ्र ही सब कुछ सीख लेते हैं जबकि कुछ बहुत प्रयास करने पर भी अपेक्षित गति से सीखने में असमर्थ रहते हैं। सीखने की असमर्थता के कारण धीरे-धीरे ये बच्चे कक्षा के अन्य बच्चों से पिछड़ते जाते हैं। उन्हें सीखने में अनेकों प्रकार की कठिनाइयां महसूस होती हैं। ऐसे ही बच्चों की कठिनाइयों को दूर करने के लिए शिक्षक उपचारात्मक शिक्षण की सहायता लेते हैं।

उपचारात्मक शिक्षण का अर्थ-

शिक्षा जगत में 'उपचारात्मक' शब्द चिकित्साशास्त्र से लिया गया है। जिस प्रकार एक कुशल चिकित्सक विविध प्रकार के परीक्षणों के आधार पर रोगी के रोग तथा रोग के कारणों का पता लगाकर उसकी समुचित चिकित्सा करता है, उसी प्रकार एक कुशल शिक्षक विभिन्न प्रकार की शिक्षण प्रविधियों, परीक्षणों, निरीक्षण व वार्तालाप के आधार पर शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े व कमजोर बच्चों की कठिनाइयों का पता लगाते हैं और फिर उपचारात्मक शिक्षण के द्वारा उनकी कठिनाइयों/त्रुटियों को दूर करके उनके सीखने की क्षमता में वृद्धि करते हैं तथा उन्हें सामान्य बालकों के स्तर पर लाने का प्रयास करते हैं।

उपचारात्मक शिक्षण का अभिप्राय उस शिक्षण से है जिसकी व्यवस्था छात्रों की कमियों/दुर्बलताओं /अशुद्धियों को दूर करने के लिए की जाती है। उनकी दुर्बलताओं को जानकर शिक्षा का ऐसा कार्यक्रम बनाया जाता है जिससे उनकी विशिष्ट कठिनाइयों, दुर्बलताओं, बुरी आदतों व नकारात्मक मनोवृत्तियों को दूर करके सीखने के दूषित प्रभावों को नष्ट किया जा सकता है और गलत ढंग से सीखी गई बातों में सुधार किया जा सकता है।

<u>परिभाषाएँ-</u>

योकम व सिम्पसन के अनुसार- "उपचारात्मक शिक्षण उस विधि को खोजने का प्रयत्न करता है जो छात्र को अपनी कुशलता या विचार की त्रुटियों को दूर करने में सफलता प्रदान करें।"

SACHIN ACADEMY

ब्लायर के अनुसार- "उपचारात्मक शिक्षण का प्रमुख कार्य है- दोषपूर्ण अध्ययन एवं अध्यापन के प्रभाव को दूर करना। इसका मुख्य लक्ष्य है इन दोषों व दोषों के कारणों को खोजना एवं कमजोरियों का निराकरण करना।"

शिक्षा शब्दकोष के अनुसार- "उपचारात्मक शिक्षण, एक छात्र की कमी निम्न सामान्य योग्यता के कारण नहीं, को अंशतः अथवा पूर्णतः दूर करने के लिए उद्दिष्ट विशेष शिक्षण है।"

उपचारात्मक शिक्षण निदानात्मक परीक्षण के बाद आता है क्योंकि नैदानिक परीक्षणों के द्वारा ही पहले छात्रों की त्रुटियों, कठिनाइयों व अधिगम दोषों की जानकारी प्राप्त की जाती है और उसके बाद उपचारात्मक शिक्षण के द्वारा उन्हें दूर करने का प्रयास किया जाता है।

उपचारात्मक शिक्षण का महत्व

शिक्षा प्रक्रिया में उपचारात्मक शिक्षण का महत्व निम्नलिखित कारणों से है -

- छात्रों की विषय/प्रकरण सम्बन्धी विशिष्ट कठिनाइयों / दुर्बलताओं का पता चल जाता है।
- छात्रों की सामान्य व विशिष्ट कठिनाइयों का निराकरण हो जाता है।
- बालकों की क्षमताओं को उचित दिशा में मोड़ने में सहायता मिलती है।
- शिक्षण रोचक, उद्देश्यपूर्ण व प्रभावशाली बनाने में सहायता मिलती है।
- छात्रों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होता है। उनमें आत्मविश्वास जाग्रत होता है।
- बालकों की व्यक्तित्व सम्बन्धी समस्याओं का निराकरण हो जाता है।

- शिक्षक की प्रवृत्ति में सकारात्मक परिवर्तन आता है।
- छात्रों द्वारा की जाने वाली त्रुटियों में सुधार के साथ-साथ भविष्य में होने वाली त्रुटियों से भी बचाव होता है।
- उपचारात्मक शिक्षण से बालकों को अपने वातावरण से अनुकूलन करने में सहायता मिलती है।

उपचारात्मक शिक्षण प्रदान करने की विधियाँ-

छात्रों की त्रुटियों की जानकारी होने पर उन्हें दूर करने हेतु शिक्षक द्वारा उपचारात्मक शिक्षण कार्य व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों प्रकार से किया जा सकता है। छात्रों का वर्गीकरण करके मानसिक स्तर व कठिनाइयों के अनुसार उनके स्तर के अनुसार अभ्यास कार्य व अन्य क्रियाकलाप कराये जाने चाहिए।

उपचारात्मक शिक्षण को सफल व प्रभावी बनाने हेतु निम्न प्रकार के क्रियाकलाप कराये जा सकते हैं -

- व्यक्तिगत शिक्षण
- समूह शिक्षण छोटे व बड़े समूह
- साधारण अभ्यास कार्य लिखित व मौखिक
- विशिष्ट अभ्यास कार्य लिखित व मौखिक
- समूह चर्चा
- वाद विवाद
- गोष्ठियों / खेल व अन्य गतिविधियों का आयोजन
- प्रॉजेक्ट कार्य

SACHIN ACADEMY

- पुनरावृत्ति व गृहकार्य
- शिक्षण अधिगम सामग्री का प्रयोग
- कार्यपुस्तिका का प्रयोग
- सहपाठी अध्ययन समूह
- समस्त कार्यों का सतत मूल्यांकन

बहुकक्षा एवं बहुस्तरीय शिक्षण(Multi grade and multi level teaching)-

वर्तमान समय में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में निरन्तर जनसंख्या वृद्धि के कारण विद्यालयों में छात्र संख्या तो बढ़ती जा रही है लेकिन उस अनुपात में शिक्षकों की संख्या अभी भी बहुत कम है। अनेक विद्यालय ऐसे हैं जहाँ एक ही अध्यापक कक्षा एक से पाँच तक के बच्चों को पढ़ा रहे हैं। प्रत्येक कक्षा के लिए अध्यापक की नियुक्ति एक जटिल समस्या बनी हुई है। इसके साथ एक विद्यालय की विभिन्न कक्षाओं में अध्ययनरत छात्रों की वैयक्तिक भिन्नता, उपलब्धि, अभिरुचि तथा मानसिक परिपक्वता एक अलग से एक समस्या उत्पन्न करती है। अपनी मानसिक योग्यता, अभिरुचि और विकास क्रम की विशिष्टता के कारण ही एक ही कक्षा में पढ़ने वाले छात्रों के अधिगम का स्तर भी भिन्न-भिन्न होता है। इस समस्या के समाधान हेतु ऐसी शिक्षण युक्तियाँ और तकनीकें अपनानी होंगी, जिनके द्वारा एक ही समय में एक से अधिक कक्षाओं का संचालन सुचारू रूप से किया जा सके।

बहुकक्षा शिक्षण का अर्थ

विद्यालयों में कक्षा-कक्षों के अभाव में दो या दो से अधिक कक्षाओं को एक साथ पढ़ाना पड़ता है, जिससे शिक्षण की गुणवत्ता प्रभावित होती है। इसी कमी को दूर करने के लिए ही बहुकक्षा शिक्षण की व्यवस्था अपनायी जाती है। बहुकक्षा शिक्षण का आशय प्रभावी प्रबन्धन विधियों को अपनाकर व्यवस्थित शिक्षण से है। बहुकक्षा शिक्षण का सीधा अर्थ है - एक शिक्षक द्वारा एक से अधिक कक्षाओं से एक साथ पढ़ाना। इसमें शिक्षक एक से अधिक कक्षा के बच्चों को एक साथ बैठाकर शिक्षण करता है। इस शिक्षण व्यवस्था के अन्तर्गत शिक्षक की श्रम शक्ति, सूझ-बूझ और समय का अधिक उपयोग होता है। बहुकक्षा शिक्षण को प्रभावी ढंग से संचालित करने के लिए शिक्षक को पाठ्यक्रम, पाठ्पुस्तकों, समय विभाजन चक्र, समूह-नायक, बैठक व्यवस्था, बच्चों के विषयवार समूह को सही रूप में संचालित करना होता है। इसमें शिक्षक को एक से अधिक कक्षाओं के बच्चों को एक साथ बैठाकर शिक्षण कार्य करना होता है। बच्चों को छोटे-छोटे समूहों में बांटकर उन्हें समूह-कार्य दिया जाता है, जिससे बच्चों को एक-दूसरे के साथ चर्चा करते हुए तथा एक-दूसरे को सहयोग देते हुए विषय को समझने का अवसर मिल जाता है। शिक्षक एक समूह को कार्य देकर दूसरे समूह के साथ कार्य करता है।

बहुश्रेणी शिक्षण की आवश्यकता

बहुश्रेणी शिक्षण बहुकक्षा शिक्षा आज एक अपरिहार्य आवश्यकता है क्योंकि हमारे अधिकांश प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षकों की संख्या प्रति विद्यालय पाँच से कम है। बहुश्रेणी शिक्षण में शिक्षक को भाषा, गणित तथा पर्यावरणीय अध्ययन के साथ-साथ कला और कार्यानुभव का भी शिक्षण करना अनिवार्य

होता है। संज्ञानात्मक क्षेत्र के साथ ही सह-संज्ञानात्मक क्षेत्र में भी बहुत से कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। इस शिक्षण में गीत, लोकगीत, नाटक, कविता पाठ तथा अन्त्याक्षरी आदि को विशेष महत्त्व प्रदान किया जाता है। ये क्रिया-कलाप शिक्षण को अधिक प्रभावी बनाने में सहायक होते हैं।

बहुश्रेणी शिक्षण में मॉनीटर प्रणाली तथा प्रोजेक्ट प्रणाली का विशेष महत्व होता है। प्रोजेक्ट कार्य को करने के लिए बच्चों को समूहों में बाँट दिया जाता है क्योंकि समूह में सीखना प्रत्येक शिक्षण विधा हेतु आवश्यक होता है। समूह के द्वारा उनमें सहभागिता से कार्य करने की भावना जाग्रत होती है। वे एक-दूसरे के अभ्यास कार्यों को स्वयं हल करते हैं साथ ही साथ उनकी त्रुटियों का सुधार भी करते रहना चाहिए।

बहुस्तरीय शिक्षण का अर्थ

"मानसिक स्तरीय शिक्षण ही बहुस्तरीय शिक्षण कहलाता है।" एक ही कक्षा में अलग-अलग तरीके से व अलग-अलग गति से सीखने वाले छात्र होते हैं। जब एक शिक्षक एक ही समय में कक्षा के प्रत्येक बच्चे को उसके स्तर के आधार पर समूहों में बाँटकर शिक्षण कार्य करता है, तो वह बहुस्तरीय शिक्षण कहलाता है। जैसे-किसी कक्षा में गणित विषय में तेज, मध्यम तथा धीमी गति से सीखने वाले बच्चे है, उन्हें क्रमशः कठिन, मध्यम एवं सरल प्रश्न देकर हल कराना। बहुस्तरीय शिक्षण कहलाता है।

बहुस्तरीय शिक्षण की आवश्यकता -

- बच्चों की उपलब्धि स्तर का अलग होना।
- बच्चों में सीखने की गति का अलग-अलग होना।

सूक्ष्म शिक्षण(Micro teaching)-

आप सभी ने कक्षा में अपने अध्यापकों को पढ़ाते हुए देखा होगा। उनमें से कुछ का शिक्षण कार्य बहुत अच्छा लगता होगा। उनके एक बार पढ़ाने पर अच्छी तरह समझ में आ भी जाता होगा। कभी आपने सोचा कि उनके पढ़ाने का तरीका इतना प्रभावी कैसे है? दरअसल आपके गुरूजनों ने शिक्षण कार्य में दक्षता प्रशिक्षण विधियों के बारम्बार अभ्यास से पायी होगी। शिक्षण कार्य में समझ देने वाली नयी विधियों में से एक विधि है- सूक्ष्म शिक्षण।

सूक्ष्म शिक्षण से तात्पर्य है- शिक्षण का लघु रूप। शिक्षण की जटिल प्रक्रिया को सरलतम ढंग से छोटे-छोटे सोपानों में प्रशिक्षुओ के सामने प्रस्तुत करने की एक रुचि पूर्ण प्रक्रिया है सूक्ष्म शिक्षण। सूक्ष्य शिक्षण के अन्तर्गत प्रशिक्षुओं को शिक्षण कौशल की बारीकियों से अवगत कराया जाता है। अध्यापक बनने के पूर्व शिक्षण दक्षता का एक प्रकार से अभ्यास है।

परिभाषा-

एलेन ने अपनी पुस्तक माइक्रोटीचिंग में लिखा है "सूक्ष्म शिक्षण सभी प्रकार की शिक्षण सम्बन्धी क्रियाओं को छोटे-छोटे भागों में विभक्त करना है।"

क्लिफ्ट- "सूक्ष्म शिक्षण अध्यापक प्रशिक्षण की वह विधि है जिसमें शिक्षण की स्थितियों को सरल किया जाता है और शिक्षण व्यवहार को किसी एक विशिष्ट

कौशल के अभ्यास से जोड़ दिया जाता है। यह अभ्यास शिक्षण की अवधि एवं कक्षा के आकार के छोटे स्वरूप पर होता है।''

बी०के0पासी- ''सूक्ष्म शिक्षण एक प्रशिक्षण तकनीकि है जो प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले शिक्षकों से यह अभिलाषा रखती है कि किसी तथ्य को थोड़े से छात्रों को, थोड़े से समय में एक विशिष्ट शिक्षण कौशल के माध्यम से शिक्षण दें।''

- सूक्ष्म शिक्षण में कक्षा का आकार छोटा होता है।
- पाठ्यवस्तु सीमित होती है।
- पढ़ाने की अवधि 10 मिनट होती है।
- छात्रों प्रशिक्षु की संख्या 5 से 10 होती है।
- एक शिक्षण कौशल पर ही बल दिया जाता है।

''श्यामपट्ट(Blackboard) कार्य'' को एक शिक्षण कौशल के रूप में सिखाना है तो इसमें हम निम्नवत बिन्दुओं को समझायेंगे-

- लेख स्पष्ट व स्वच्छ हो।
- श्यामपट्ट के समक्ष किस दिशा में खड़े होकर लेखन शुरू हो।
- लेख पठनीय हो।
- लेख सीधी पंक्ति में हो।
- अक्षरों, शब्दों, पंक्तियों के बीच पर्याप्त दूरी हो।
- लेखन करते समय चाक-श्यामपट्ट की आवाज न हो।
- कक्षा शिक्षण के बाद लिखित अंश को साफ कर दिया जाय।

सूक्ष्म शिक्षण एक प्रकार से अभ्यास की प्रक्रिया है। चूँकि इसमें प्रशिक्षु थोड़े से छात्रों को 10 मिनट तक एक छोटा सा पाठ पढ़ाता है। पाठ खत्म होने के बाद प्रशिक्षु अपने पर्यवेक्षक से विचार-विमर्श करता है। थोड़े से अभ्यास के बाद छात्राध्यापक अपने पाठ के सम्बन्ध में अपने पर्यवेक्षक के सुझाये गये आधारों पर पाठन करता है, मूल्यांकन करता है और अपने कक्षा शिक्षण को अच्छा बनाता है।

आवश्यकता एवं महत्व

सूक्ष्म शिक्षण की प्रक्रिया द्वारा छात्राध्यापकों को वास्तविक शिक्षण के लिए तैयार किया जाता है। परम्परागत शिक्षण को सरल बनाकर प्रशिक्षुओं को समझाया जाता है। इसकी आवश्यकता इस बात में निहित है कि यह सीमित समय व संसाधनों में शिक्षण कार्य का अनुभव देता है और एक-एक कौशल को क्रमशः सीखते हुए शिक्षण कला में दक्ष बनाता है। इस शिक्षण द्वारा सबसे बड़ा लाभ यह है कि प्रशिक्षु पढ़ाने के बाद स्वयं शीघ्र ही पर्यवेक्षकों की सलाह पर, अपने शिक्षण कार्य का मूल्यांकन करते हैं एवं सुधार करते हैं। सूक्ष्म शिक्षण की मूल बात यह है कि शिक्षण जैसे व्यापक संप्रत्यय को छोटे-छोटे भागों में समझाया जाय, धीरे-धीरे सम्पूर्णता की ओर बढ़ा जाय, जिससे शिक्षण कार्य प्रभावी हो और उसमें गुणवत्ता हो।

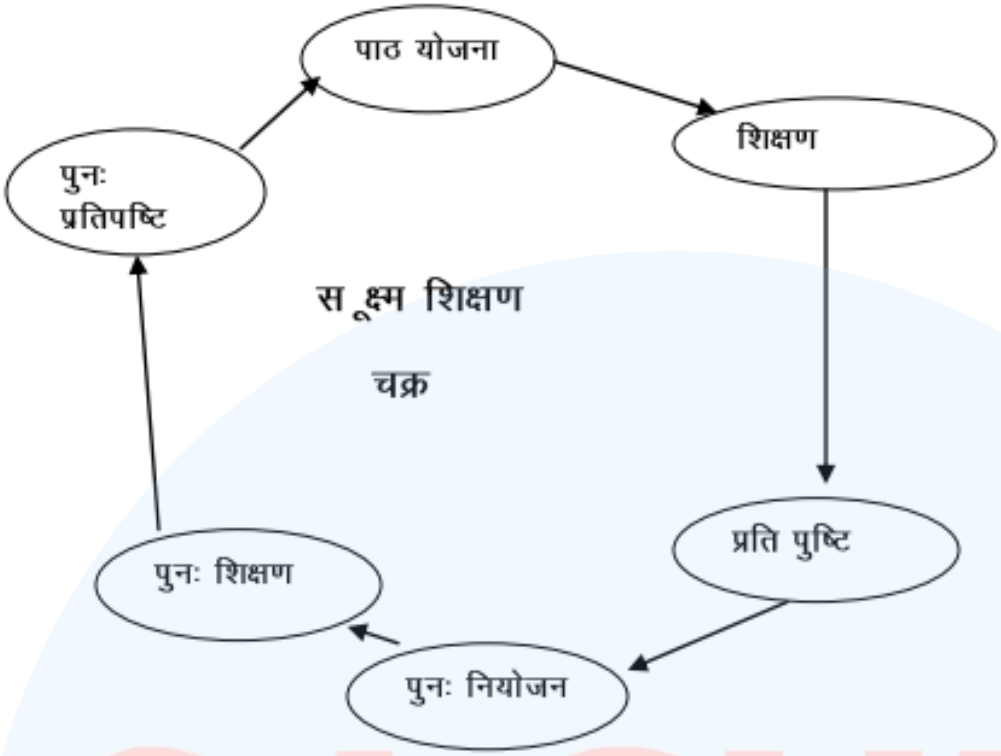

इसे उदाहरण से समझते हैं। मान लीजिए प्रशिक्षु को प्रश्नोत्तर कौशल को सीखना है उस पर उसने पाठ्यवस्तु का चयन किया। उस पर पाठयोजना तैयार की उसको पढ़ाया, उसमें अच्छाइयों एवं कमियों को अपने निर्देशक से जाना फिर पाठ योजना निर्देशानुसार तैयार की, शिक्षण किया पुनः निर्देशक से अपने द्वारा किये गये शिक्षण की कमियों/अच्छाइयों को जाना और प्रतिपुष्टि(Feedback), शाबाशी, अच्छा प्राप्त की। इस प्रकार शिक्षण के इस कौशल से परिचित हुए।

नियोजन (Planning)

सबसे पहले कक्षा का निर्धारण होता है। विषयवस्तु तथा कौशल का चयन किया जाता है। कक्षा में छात्रों की संख्या निश्चित की जाती है फिर पाठ योजना तैयार की जाती है।

शिक्षण

पाठ योजना के अनुसार निर्धारित कक्षा में शिक्षण कार्य किया जाता है। पर्यवेक्षक तथा साथी छात्राध्यापक, पढ़ाने वाले छात्राध्यापक की आलोचना करते है। छात्राध्यापक स्वयं अपनी गलतियां है। पर्यवेक्षक(supervisor) की सलाह अनुसार सुधार करता है। यही क्रिया तब तक चलती है जब तक वांछित सुधार न हो जाय।

पश्चपोषण (Post subsistence)

शिक्षण के बाद पर्यवेक्षक तथा साथी छात्राध्यापकों से विचार-विमर्श होता है, गलतियों का विश्लेषण किया जाता है।

पुनर्नियोजन(Redeployment)

छात्राध्यापक अपने व्यवहार को अच्छा बनाने हेतु पर्यवेक्षक के सुझावों के आधार पर पाठ को पुनः नियोजन करता है।

पुनः शिक्षण

पुनः शिक्षण के लिए नये छात्रों को न लाकर पाठ्य सामग्री बदलकर देना चाहिए। उस नये विषय पर पाठ्योजना बनाकर शिक्षण कार्य का अभ्यास किया जाता है।

SACHIN ACADEMY

पुनः पश्चपोषण

पुनः शिक्षण के बाद पर्यवेक्षक किये गये शिक्षण पर अपनी टिप्पणी करता है जो प्रशिक्षु के लिए प्रतिपोषण का काम करता है। शिक्षण उत्तरोतर सुधरता जाता है। इस प्रकार सूक्ष्म शिक्षण का चक्र अपने आप में शिक्षण की प्रक्रिया को समझाने में मद्द करता है।

दरअसल सूक्ष्म शिक्षण छोटे से बड़े की तरफ या यूँ कहें कि खण्ड से पूर्ण की ओर बढ़ने की प्रक्रिया है।

मुख्य सिद्धान्त

अभ्यास का सिद्धान्त(Theory of practice)- सूक्ष्म शिक्षण में छोटी-छोटी इकाई में अभ्यास कराया जाता है ताकि प्रशिक्षु कक्षागत समस्याओं से अवगत हो सके।

निरन्तरता का सिद्धान्त(Principle of continuity)- यह प्रक्रिया तब तक चलती है जब तक शिक्षण कौशल में परिपक्वता नहीं आ जाती है।

प्रबलन व मूल्यांकन का सिद्धान्त(Principle of reinforcement and evaluation)- इस प्रक्रिया में छात्राध्यापक पाठ नियोजन, शिक्षण पर्यवेक्षक के निर्देशन में करते हैं और कमियों में सुधार करते हैं। शिक्षण का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करते हैं, प्रतिपोषण प्राप्त करते है। इस शिक्षण विधि में प्रशिक्षुओं के लिए आत्म / स्वमूल्यांकन का अवसर ज्यादा रहता है अतएव अभिप्रेरणा(Motivation) मौजूद रहने से शिक्षण कार्य रुचिपूर्ण लगने लगता है।

शिक्षण कौशल (Teaching Skills)

किसी भी कार्य को अच्छी तरह से करने के लिए कुछ विशेष प्रयत्न की जरूरत होती है और शिक्षण तो एक जटिल प्रक्रिया है। इसको समझने के लिए निरन्तर अभ्यास का होना आवश्यक है और जब अभ्यास क्रम पूरा हो जाता है तब उस अवस्था को कहा जाता है कि उस कार्य के प्रति हमने कुशलता प्राप्त कर ली। शिक्षण में जब हम कुशलता की बात करते हैं तो उसे शिक्षण कौशल का नाम दिया जाता है।

शिक्षण कौशल अर्थात शिक्षण कार्य में कुशलता। इसका आशय शिक्षक द्वारा शिक्षण देते समय अपनाये जाने वाले हाव-भाव, भंगिमा(posture) या विविध कार्य-कलापों के व्यवहारिक तौर-तरीकों के समूह से लगाया जाता है। शिक्षण कौशल से शिक्षण बिन्दुओं के क्रम का ज्ञान होता है। शिक्षण के तीन पहलू का ज्ञान (भावात्मक, ज्ञानात्मक तथा क्रियात्मक) कराने में शिक्षण कौशलों की आवश्यकता स्वयं में ही स्पष्ट है।

परिभाषा-

एन0एल0गेज- शिक्षण कौशल वह विशिष्ट अनुदेशन प्रक्रिया है, जिसे शिक्षक अपने कक्षा शिक्षण में प्रयोग कर सकता है। यह शिक्षणक्रम की विविध क्रियाओं से सम्बन्धित होता है, जिन्हें शिक्षक अपनी कक्षा अंतक्रिया में निरन्तर प्रयोग में लाता है।''

प्रो०बी०के०पासी०- ''यह सम्बद्ध शिक्षण व्यवहारों का वह स्वरूप होता है, जो कक्षा की विशिष्ट अन्तः प्रक्रिया परिस्थितियों को उत्पन्न करता है, जो शैक्षिक उद्देश्य को प्राप्त करने में सहायक होते हैं और छात्रों को सीखने में सुगमता प्रदान करते हैं।''

वास्तव में शिक्षण कौशल, शिक्षण को अधिगम की ओर अग्रसर करने वाली युक्ति है। नीरस शिक्षण को सक्रियता तथा प्रभावशीलता प्रदान करने का आधार शिक्षण दक्षताओं को ही माना जाता है। इसलिए शिक्षण कौशलों में पारंगतता प्राप्त करना प्रशिक्षण का मुख्य ध्येय है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से हमने जाना-

- शिक्षण कौशल शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक होते हैं।
- शिक्षण कौशल कक्षा अन्तःक्रिया की परिस्थिति उत्पन्न करते हैं।
- शिक्षण कार्य को आधार प्रदान करते हैं।
- सीखने में सहायक होते हैं।
- शिक्षण को प्रभावी बनाने में सहायक होते हैं।

वस्तुतः सफल व प्रभावी शिक्षण हेतु विभिन्न कौशलों का प्रयोग प्रायः शिक्षकों द्वारा किया जाता है जिनका क्रमशः वर्णन इस प्रकार है-

पाठ प्रस्तावना कौशल (Lesson Introduction Skills)

किसी भी शिक्षण की शुरूआत का प्रथम चरण प्रस्तावना होती है। प्रस्तावना से आशय भूमिका या विषयवस्तु की सामान्य जानकारी। प्रस्तावना कौशल के प्रयोग में सर्वप्रथम शिक्षक पढ़ाये जाने वाले पाठ के बारे में छात्रों की जानकारी लेने के लिए प्रश्न करता है तद्नुसार उनके पूर्व ज्ञान को नयी जानकारी से जोड़ते हुए शिक्षण करता है। इस प्रकार प्रस्तावना कौशल में ज्ञात से अज्ञात

सूत्र का अनुसरण किया जाता है। उदाहरण- भारतदेश पाठ पढ़ाना है- प्रस्तावना कौशल का प्रयोग इस प्रकार होगा -

- विश्व के कुछ देशों के नाम बताएँ ?
- यह किस देश का मानचित्र है ? भारतवर्ष का मानचित्र दिखाकर
- हम किस देश में रहते हैं ?

प्रस्तावना के घटक

- पूर्वज्ञान
- उद्देश्य और सहायक सामग्री
- प्रश्नों का मुख्य पाठ से सम्बन्ध
- समुचित अवधि
- छात्रों की रुचि व प्रेरणा

जो शिक्षक जितना अधिक आकर्षक पाठ प्रस्तावना कौशल का अनुप्रयोग करने में सक्षम होता है उतना ही अधिक कक्षा में एकाग्रता व अनुशासन बना रहता है।

बिन्दु

- प्रस्तावना पूर्व ज्ञान पर आधारित होनी चाहिए।
- प्रस्तावना प्रासंगिक होनी चाहिए।
- समस्त कक्षा की सहभागिता जरूरी है।
- प्रस्तावना कौशल का जीवन से सम्बन्ध होना चाहिए।

उद्देश्य कथन कौशल (Objective Statement Skills)

शिक्षण एक क्रमबद्ध प्रक्रिया है, अतएव प्रस्तावना कौशल के बाद शिक्षण का अगला चरण उद्देश्य कथन होता है। प्रस्तावना प्रश्न के बाद छात्रों में नवीन ज्ञान के प्रति जिज्ञासा जाग्रत होती है उसको शिक्षक द्वारा अवश्य सन्तुष्ट करनी चाहिए। उद्देश्य कथन इसी दिशा में एक सोपान है। जैसे प्रस्तावना प्रश्न से स्पष्ट हुआ कि शिक्षक भारत देश पढ़ाना चाहता है। इसका उद्देश्य कथन इस प्रकार होगा आज हम लोग "भारत देश" नामक पाठ का अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य कथन कौशल की उपयोगिता

- पाठ शिक्षण का लक्ष्य निर्देशित होता है।
- शिक्षार्थी की पाठ में रुचि जाग्रत होती है।
- शिक्षण-अधिगम के प्रति क्रियाशीलता बढ़ती है।
- शिक्षण में स्पष्टता आती है।

प्रश्न कौशल (Question Skills)

शिक्षण कार्य प्रश्नों की श्रृंखला में अग्रसर होता है। पाठ का उत्तरोतर विकास शिक्षण में प्रश्नों के द्वारा ही होता हैं अतएव प्रश्न पूछने का कौशल शिक्षक में होना जरूरी है।

थिंग्र महोदय ने कहा भी है- शिक्षण का अर्थ कुशलता से प्रश्न करना है, यह शिक्षण का उत्तम साधन है।

प्रश्न पूछने के उद्देश्य -

- प्रश्न पूर्व ज्ञान को नवीन ज्ञान से जोड़ते हैं।
- रुचि, जिज्ञासा को जाग्रत करते हैं।
- अधिगम समस्याओं का ज्ञान होता है।
- क्रियाशीलता में वृद्धि होती हैं।
- पाठ शिक्षण को क्रमबद्ध बनाते हैं।

प्रश्न कौशल के घटक

- प्रश्न करने की प्रक्रिया
- प्रश्नों की बनावट
- प्रश्नों की पुनरावृत्ति
- प्रश्न के परिणाम

प्रश्न कौशल से शिक्षण का विकास तभी सम्भव है जब निम्नलिखित बातें ध्यान में रखी जायें-

- प्रश्न सरल व स्पष्ट हो।
- प्रश्न प्रासंगिक हो।
- प्रश्न स्तरानुकूल हो।
- प्रश्नों में विविधता हो।
- भाषा बोधगम्य हो।

SACHIN ACADEMY

प्रश्न कैसे हो-

- सरल
- स्पष्ट
- प्रासंगिक(Relevant)
- स्तरानुकूल(standard appropriate)
- विविधता
- बोधगम्य(comprehensible)

व्याख्या कौशल (Explanation Skills)

पाठ शिक्षण में पूछे गये प्रश्नों का समाधान या स्पष्टीकरण में सबसे सहायक कौशल व्याख्यान कौशल है। इस कौशल के प्रयोग में शिक्षक विविध प्रकरणों, तथ्यों को समझाने के लिए सरल से सरल भाव, विचार, उदाहरण के द्वारा क्रमिक व तार्किक रूप से विषयवस्तु का प्रकटन करता है। इस कौशल की सफलता इस बात में निहित है कि शिक्षक पाठ का सम्पूर्ण व गहन ज्ञान रखता हो।

घटक

- कथनों में तारतम्यता।
- भाषा में धाराप्रवाह।
- प्रारम्भिक कथनों का प्रयोग।
- स्पष्ट निष्कर्ष वाले कथनों का उपयोग।
- छात्र सहभागिता।

SACHIN ACADEMY

- बीच-बीच में प्रश्नोतर विधि का प्रयोग।

भाषा शिक्षण में व्याख्या कौशल की विधियाँ-

- स्पष्टीकरण द्वारा।
- परिभाषा द्वारा।
- वस्तु प्रदर्शन द्वारा।
- अभिनय द्वारा ।
- दृष्टान्त कौशल ।

व्याख्या कौशल की एक प्रमुख विधि है उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण, इस दक्षता को ही दृष्टान्त कौशल कहा जाता है। इस कौशल के प्रयोग में आगमन विधि का संयोजन किया जाता है।

लेण्डन महोदय का कथन है- "उदाहरणों में न केवल स्पष्ट करने की क्षमता होती है, बल्कि यह ज्ञान के स्थायित्व प्रदान करने में भी मददगार है।"

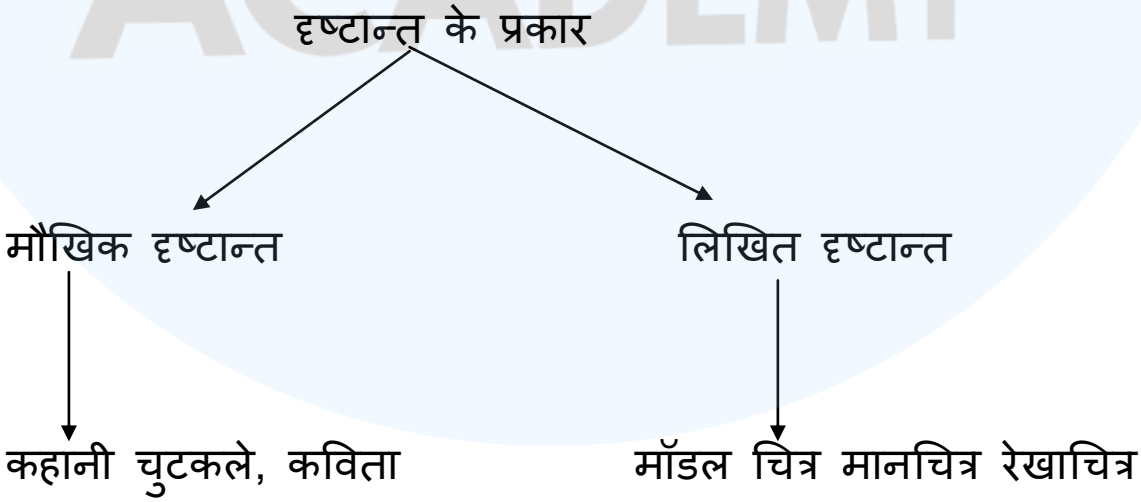

दृष्टान्त कौशल के द्वारा शिक्षण बोधगम्य व सरल बनाने के लिए जरूरी है-

- दृष्टान्त सरल व स्पष्ट हो।
- पाठ्यवस्तु से सम्बद्ध हो।
- रुचिपूर्ण हो।
- छात्रों के स्तरानुकूल हो।
- पाठ विकास में सहायक हो।

छात्र सहभागिता कौशल (Student Participation Skills)

उदाहरण कौशल छात्र सक्रियता एवं सहभागिता को प्रेरित करता है जिससे शिक्षण द्विमुखी प्रक्रिया के रूप में अग्रसर होता है। बालकेन्द्रित शिक्षण में छात्र सहभागिता जरूरी है। इस कौशल का मुख्य लक्ष्य छात्रों के सहयोग, प्रतिक्रिया से पाठ का क्रमशः विकास करना है। जितना छात्र भाग लेंगे शिक्षण उतना ही रुचिकर व अनुशासित होगा।

छात्र सहभागिता कौशल का प्रयोग कैसे -

- प्रश्न पूछकर
- चित्र बनवाकर
- वाक्य अधूरे छोड़कर
- खेल, गीत, कविता द्वारा
- फ्लैश कार्ड के प्रयोग द्वारा रिक्त स्थान भरवाकर

उद्दीपन परिवर्तन कौशल (Stimulus Variation Skills)

छात्र सहभागिता बढ़ाने के लिए शिक्षक कई तौर-तरीकों का प्रयोग करता है जैसे- हाव-भाव, शरीर संचालन, स्वर में उतार-चढ़ाव मौन, भावाभिव्यक्ति आदि।

उद्दीपन कौशल का महत्त्व- एल0सी0सिंह के मत में उद्दीपन परिवर्तन कौशल विद्यार्थियों की प्रगति और रुचि को अधिकतम बढ़ाने, उनका ध्यान बनाये रखने और निश्चित करने के लिए वातावरण में उद्दीपन परिवर्तन द्वारा छात्रों के ध्यान केन्द्रीकरण और आकर्षित करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

उद्दीपन परिवर्तन के घटक

- यथोचित शरीर संचालन
- हाव-भाव भंगिमा का प्रयोग
- भावों का केन्द्रीकरण
- स्वरों में उतार-चढ़ाव
- शिक्षक-शिक्षार्थी वार्तालाप में परिवर्तन
- मौन

पुनर्बलन कौशल (Reinforcement Skills)

उद्दीपन कौशल की गुणवत्ता पुनर्बलन में निहित है। पुनर्बलन से तात्पर्य ऐसे उद्दीपनों से है, जिनके प्रस्तुतीकरण या हटाने से क्रिया-अनुक्रिया के होने की सम्भावना अधिक हो जाती है। स्किनर के मत में शिक्षक द्वारा विद्यार्थियों की प्रशंसा करना, उत्तर को स्वीकार करना या सिर हिलाने मात्र से ही बालक पुनर्बलित होता है। वास्तव में पुनर्बलन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रतिक्रिया के

फौरन बाद किसी उद्दीपन को प्रस्तुत करने पर प्राणी की प्रतिक्रिया शक्ति बढ़ जाती है।''

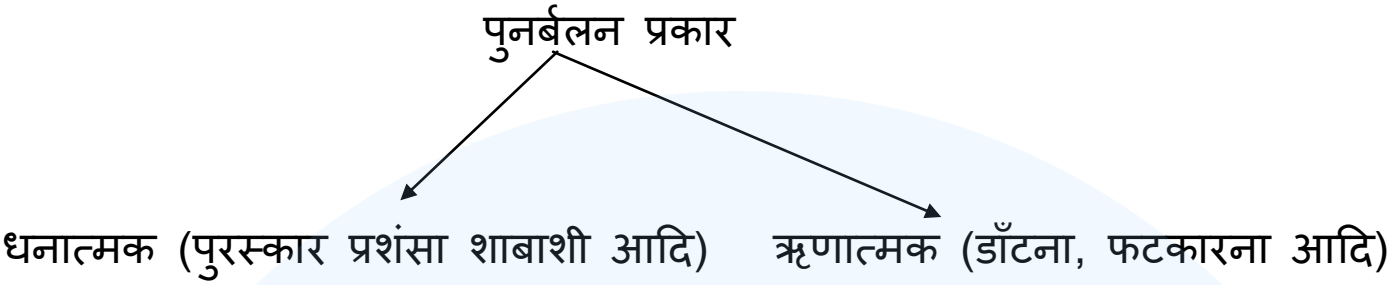

पुनर्बलन का सकारात्मक प्रयोग छात्रों के वांछित व्यवहारों को प्रबल बनाने के लिए किया जाता है और ऋणात्मक पुनर्बलन द्वारा अवांछित व्यवहारों की पुनरावृति को रोकने का प्रयास किया जाता है।

पुनर्बलन(Reinforcement) के मुख्य घटक -

- प्रोत्साहन देने वाले कथनों का प्रयोग
- छात्र प्रतिक्रिया का आदर
- हाव-भाव व अन्य शाब्दिक संकेतों का प्रयोग
- नकारात्मक शाब्दिक संकेतों का प्रयोग
- नकारात्मक अशाब्दिक संकेतों का प्रयोग
- छात्रों के सही उत्तरों को श्यामपट्ट पर लिखना

श्यामपट्ट लेखन कौशल (Blackboard Writing Skills)

पुनर्बलन कौशल को छात्रों तक संप्रेषित करने का एक माध्यम श्यामपट्ट भी है। प्रत्येक शिक्षक के लिए यह अनिवार्य है कि उसे श्यामपट्ट प्रयोग में

दक्षता हो। श्यामपट्ट प्रयोग से शिक्षण श्रवणेन्द्रिय और नेत्रेन्द्रिय(sense of hearing and sense of sight) दोनों में सक्रियता रहती है, जिससे विषयवस्तु की बोधगम्यता बढ़ती जाती है। इसे शिक्षण का विकासात्मक कौशल भी कह सकते हैं।

श्यामपट्ट का महत्व निम्नवत है -

- प्रारम्भिक सूचना देने में सहायक।
- विषय की व्याख्या व विश्लेषण में सहायक।
- चित्र-मानचित्र रेखाचित्र बनाकर समझ बढ़ाने में सहायक।
- समूह शिक्षण में उपयोगी।
- छात्रों में लेखन योग्यता का विकास।
- शिक्षण की गुणवत्ता में वृद्धि होती है।

पुनरावृत्ति कौशल (Iteration Skills)

शिक्षण कार्य कितना सफल रहा इसका मापन अभ्यास प्रश्नों द्वारा किया जाता है, इसे ही पुनरावृति कौशल कहा जाता है। इस कौशल के प्रयोग में पढ़ाये गये पाठों, प्रसंगों, तथ्यों को दोहरवाया जाता है जिससे अधिगम स्थायी होने के साथ-साथ त्रुटि रहित भी होता है। पुनरावृति की मात्रा जितनी ज्यादा होगी शिक्षण प्रक्रिया में उतनी ही गत्यात्मकता(dynamism) बढ़ेगी और छात्रगत समस्याओं का समाधान होता चलेगा।

शिक्षण में एक से अधिक कौशलों एवं गतिविधियों का समावेश

प्रशिक्षण एकांगी कार्य न होकर बहुआयामी स्वरूप वाली प्रक्रिया है जिसका लक्ष्य प्रशिक्षुओं में उन सभी कौशलों की दक्षता विकसित करके इस योग्य बनाना कि वह कक्षा शिक्षण को सर्वोतम रूप में प्रस्तुत कर सकें। अतएव आवश्यक है कि शिक्षण कौशलों का क्रमशः ज्ञान देकर उसकी समग्रता / सम्पूर्णता को समझाया जाय। कोई भी विषय ऐसा नहीं है जिसे एक कौशल प्रस्तावना या उदाहरण या प्रश्न कौशल से ही पढ़ाया जाय, ऐसा शिक्षण सम्भव हो भी तो वह अधिगम के रूप में स्थायी न होकर बोझिल सा लगेगा।

अपेक्षित अधिगम स्तर (Expected Learning Level)

अपेक्षित अधिगम स्तरों को उन अधिगम दक्षताओं के अर्थ में निरूपित किया जा सकता हैं, जिनमें किसी विशेष कक्षा अथवा शिक्षा स्तर के अन्त में प्रत्येक छात्र द्वारा पूर्ण दक्षता की प्राप्ति अपेक्षित है। शिक्षण का वास्तविक उद्द्देश्य छात्र छात्राओं के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना है। इसकी सफलता इस बात पर निर्भर है कि छात्र ने कितना सीखा। अधिगम विहीन शिक्षण व्यर्थ है। सम्पूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया के मुख्य तीन पक्ष होते हैं-

शैक्षिक उद्द्देश्य

अधिगम अनुभव

मूल्यांकन

उपर्युक्त तीनों घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। शिक्षा की सफलता हेतु शैक्षिक उद्द्देश्य निर्धारित किये जाते हैं। शैक्षिक उद्द्देश्यों की प्राप्ति हेतु छात्र- छात्राओं को विद्यालय में विविध प्रकार के अधिगम अनुभव प्रदान किये जाते हैं।

मूल्यांकन के द्वारा यह जानने का प्रयास किया जाता है कि शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हो सकी है।

अपेक्षित अधिगम स्वर की संकल्पना(Concept of expected learning tone)

6-14 वय वर्ग के बच्चों को निःशुल्क व अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से शिक्षा का अधिकार अधिनियम लागू करके उसे मौलिक अधिकार की श्रेणी में लाया गया है। शिक्षा के क्षेत्र में किये गये अनेकों प्रयासों से यद्यपि नामांकन व ठहराव में तो पर्याप्त वृद्धि हुई परन्तु विद्यालयों में शैक्षिक गुणवत्ता की दृष्टि से छात्रों का अपेक्षित उपलब्धि स्तर अत्यन्त चिन्ताजनक है। अतः इसके लिए यह आवश्यक समझा गया कि प्रारम्भिक शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर सीखने के कुछ ऐसे स्तर/दक्षताएं निर्धारित किये जाएं जिन्हें प्रत्येक बच्चा उस स्तर तक अवश्य जाने, सीखे व समझे। इसी परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रिय शिक्षा नीति 1986 में इस बात पर बल दिया गया कि कोई बच्चा चाहे गाँव में पढ़े या शहर में, विद्यालय में हो अथवा अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र में, सरकारी विद्यालय में शिक्षा पाये या गैर सरकारी में, सभी के लिए जितना जानना और समझना जरूरी है इसका भी निर्धारण कर लिया जाये। अर्थात् स्कूली शिक्षा के प्रत्येक स्तर के लिए सीखने के न्यूनतम स्तर निर्धारित किये जायें जिससे सभी छात्र निर्धारित दक्षताओं को प्राप्त कर सकें। इसे न्यूनतम अधिगम स्तर (Minimum Level of Learning MLL) कहा गया है। संशोधित राष्ट्रिय शिक्षा नीति 1992 में इसे अनिवार्य अधिगम स्तर (Essential Level of Learning ELL) कहा गया है।

अपेक्षित अधिगम स्तर का अर्थ-

अपेक्षित अधिगम स्तर की रचना तीन शब्दों से मिलकर हुई है-

अपेक्षित (Expected) निर्धारित न्यूनतम दक्षताएं, जिनकी प्राप्ति की आशा/अपेक्षा की जाये। इसका सम्बन्ध दक्षताओं के उस अंश से है जो निर्धारित कक्षा के शिक्षार्थियों को निश्चित समय में अर्जित कर लेना है। दक्षता का अर्थ किसी कार्य विशेष को कुशलतापूर्वक पूर्ण कर लेने की क्षमता से है।

अधिगम का अर्थ है- सीखना अर्थात् ज्ञान, समझ, मूल्य, कौशल, व व्यवहार में होने वाला परिवर्तन।

स्तर उपलब्धि या सम्प्राप्ति का स्तर।

उपर्युक्त शाब्दिक विश्लेषण के आधार पर अपेक्षित अधिगम स्तर का अर्थ है कि प्रत्येक कक्षा व विषय के लिए निर्धारित निश्चित दक्षताओं को प्रत्येक छात्र निश्चित समय में अवश्य प्राप्त कर लें। सीखने की अधिकतम सीमा निश्चित नहीं की जा सकती परन्तु अपेक्षित स्तर तक छात्रों को पहुंचाने हेतु बच्चों को उनकी क्षमता /रुचि /गति के अनुसार सीखने के उपयुक्त अवसर व वातावरण अवश्य सुलभ कराया जाना चाहिए।

अपेक्षित अधिगम स्तर के उद्देश्य

प्रारम्भिक शिक्षा व्यक्तित्व विकास का माध्यम व राष्ट्रिय विकास की धुरी है। अतः इस स्तर पर गुणवत्ता परक शिक्षा सुनिश्चित करने हेतु अपेक्षित अधिगम स्तर की संकल्पना की गई जिसके माध्यम से लिंग, जाति व धर्म के भेदभाव के

बिना सभी वर्गों की पहुंच शिक्षा तक सम्भव हो सके। इसके प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित हैं -

- सभी छात्रों को बिना किसी भेदभाव के गुणवत्तापरक शिक्षा प्रदान करना तथा उन्हें निर्धारित कुशलताओं में पारंगत बनाना।
- छात्रों में समान शैक्षिक गुणवत्ता की प्राप्ति सुनिश्चित करना।
- विविध छात्रों के उपलब्धि स्तर की विषमताओं को समाप्त करना।
- अध्यापक के लिए स्पष्ट लक्ष्य निर्धारित करके उसके कार्य को दिशा प्रदान करना अर्थात् उसका कार्य छात्रों को निर्धारित योग्यताओं के स्तर तक पहुंचाना है न कि सिर्फ पाठ्यक्रम को पूर्ण करना।
- अध्यापकों को शिक्षण- अधिगम की उपयुक्त विधि के चयन में सहायता करना।
- विद्यार्थियों की उपलब्धि का मूल्यांकन करने की उपयुक्त पद्धति चुनने में अध्यापक की सहायता करना।
- छात्रों की कठिनाइयों के निराकरण में शिक्षक का मार्गदर्शन करना।

अपेक्षित अधिगम स्तर की सम्प्राप्ति में अधिगम अनुभवों का संयोजन(Combination of learning experiences to achieve desired learning level)-

सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में शिक्षक छात्रों को सीखने के विविध अवसर उपलब्ध कराकर उनके अनुभवों को समृद्ध करता है क्योंकि अनुभव के समृद्ध होने पर ही सीखने की सफलता निर्भर है। सीखने की अवधि में तथा उसके पश्चात् छात्रों द्वारा उस विषय से सम्बन्धित प्राप्त अनुभव ही अधिगम अनुभव कहलाते हैं।

सीखने का एक समान पर्यावरण /परिस्थिति /परिवेश उपलब्ध कराने पर भी एक ही कक्षा के दो छात्रों के अधिगम अनुभव भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। कक्षा-कक्ष में शिक्षक निम्न क्रियाकलापों के माध्यम से छात्रों को सीखने के

उपयुक्त अवसर प्रदान कर सकता है -

- पाठ पढ़वाना
- विषय सम्बन्धी लिखित कार्य करवाना
- विचार-विमर्श करना
- निरीक्षण करना
- वर्गीकरण करना
- तुलना करना
- निष्कर्ष निकालना
- वाद-विवाद/तर्क करना
- मौखिक प्रश्न पूछना
- गतिविधि कराना
- अभ्यास कार्य कराना
- खेल खिलाना समूह कार्य करवाना

रुचिपूर्ण तरीके से आयोजित उपरोक्त क्रियाकलापों के माध्यम से छात्रों में अधिगम प्रतिफल के रूप में ज्ञान, बोध, अनुप्रयोग, कुशलताओं, रुचियों, मनोवृत्तियों तथा आदर्शों का विकास होता है। अपेक्षित अधिगम स्तर के अन्तर्गत कक्षावार/विषयवार निर्धारित दक्षताओं में बच्चों को कुशल बनाने के लिए शिक्षक को ऐसे उपयोगी तौर-तरीके अपनाना चाहिए जो उनकी रुचि, आवश्यकता,

SACHIN ACADEMY

पूर्वज्ञान व परिवेश से जुड़े हों तथा जिनसे उनमें अपेक्षित दक्षता की सम्प्राप्ति भली प्रकार हो सके।

अधिगम अनुभवों के प्रकार-

अधिगम अनुभव मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं-

1. ज्ञानात्मक अधिगम अनुभव - ज्ञानात्मक अनुभव के अन्तर्गत उन बातों/तथ्यों का सीखना शामिल है जिनका सम्बन्ध ज्ञान व बोध के साथ-साथ मानसिक क्रियाओं से अधिक होता है जैसे- जानना, समझना, चिन्तन, तर्क, कल्पना, विश्लेषण, पूर्वानुमान लगाना। ज्ञानात्मक अनुभवों का मूल्यांकन उन विभिन्न विषयों में पढ़ना, लिखना, अभ्यास कार्य/गृहकार्य की जाँच व संशोधन, इकाई परीक्षण, मासिक /अर्द्धवार्षिक /वार्षिक परीक्षाओं के आयोजन द्वारा किया जाता है।

2. भावात्मक अधिगम अनुभव - छात्रों के संवेगात्मक विकास की दृष्टि से भावात्मक अधिगम अनुभवों का उपयोग किया जाता है। इन अनुभवों का सम्बन्ध छात्रों के उन सभी व्यवहारों, आदतों, रुचियों, रुझानों, मूल्यों व आदर्शों से है जो उनके चरित्र निर्माण व व्यक्तित्व के विकास में विशेष भूमिका निभाते हैं। इनके द्वारा छात्रों में नियमितता, समयबद्धता, स्वच्छता, श्रमशीलता, सहभागिता, उत्तरदायित्व, सच्चाई तथा देश प्रेम की भावना का विकास होता है।

3. क्रियात्मक अधिगम अनुभव - क्रियात्मक अधिगम अनुभव छात्रों के शारीरिक व मांसपेशीय विकास में सहायक होते हैं। यह छात्रों की कल्पनात्मक /रचनात्मक /सृजनात्मक प्रवृत्ति से जुड़े होते हैं। इसमें किसी कार्य के अच्छे तरीके से करने का ढंग, किसी वस्तु के निर्माण का कौशल तथा शारीरिक कार्य, (खेलकूद, पी0टी0, योगासन व अन्य क्रियायें) शामिल होते हैं।

अपेक्षित अधिगम प्रतिफल का अधिगम के पुनर्बलन में महत्व -

शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली, रुचिकर, सुगम, आनन्ददायी व अन्तः क्रियात्मक बनाने में पुनर्बलन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पुनर्बलन का शाब्दिक अर्थ है- पुनः बल देना अर्थात, छात्रों के सफल प्रयासों को प्रेरित व उत्साहित करना तथा अनुचित व त्रुटिपूर्ण कार्यों/ व्यवहारों की सम्भावना को कम या हतोत्साहित करना।

निर्धारित विषयवस्तु को समुचित शिक्षण क्रियाकलापों के माध्यम से शिक्षक छात्रों तक पहुंचाता है। उनमें दक्षताओं के विकास में विद्यालय, घर, परिवार व आसपास का परिवेश समान रूप से महत्वपूर्ण होता है। विद्यालय में बच्चों को अपेक्षित स्तर तक पहुंचाने में शिक्षक की भूमिका अति महत्वपूर्ण है। शिक्षण के समय छात्रों को पुनर्बलन प्रदान करने का कार्य मुख्यतः शिक्षक का है। अतः शिक्षक को चाहिए कि छात्रों के प्रत्येक सही एवं प्रशंसनीय कार्यों की सराहना सभी के समक्ष करें। इसके लिए उसे अधिक से अधिक सकारात्मक पुनर्बलन का

प्रयोग करना चाहिए। इससे छात्र कक्षा में सक्रिय रहते हैं और उनका उत्साहवर्धन होता है साथ ही उसे नकारात्मक पुनर्बलन के प्रयोग से बचना भी चाहिए।

1. सकारात्मक पुनर्बलन- सकारात्मक पुनर्बलन (प्रशंसा, पुरस्कार, सकारात्मक भाव प्रदर्शन तथा छात्रों के सुझाव/उत्तर का समर्थन) छात्रों के कार्य/व्यवहार को दृढ़ बनाते हैं।

2. नकारात्मक पुनर्बलन- नकारात्मक पुनर्बलन (निन्दा, दण्ड, नाराज होना, फटकारना, नकारात्मक भाव प्रदर्शन) छात्रों के अनुचित /अनापेक्षित कार्य /व्यवहार की सम्भावना को कम करते हैं।

शिक्षण अधिगम सामग्री (Teaching Learning Material)

मनुष्य हमेशा से ही शरीर और मन पर कम बोझ/भार को महसूस करना चाहता है। बात जब सीखने की हो, आप सभी ने यह अवश्य अनुभव किया होगा कि जिन बातों, प्रसंगों को सरल करके पढ़ाया गया चाहे वह किन्हीं साधनों के प्रयोग द्वारा ऐसा किया गया हो, उसे हम सभी ने जल्दी सीखा और सदैव के लिए उसे जीवन में उतार भी लिया। आपने कभी सोचा ये विभिन्न साधन या उपकरण क्या हैं ? वास्तव में ऐसे उपकरण, साधन या सामग्री जो शिक्षण को सरल, सहज रूप से बोधगम्य बनाते हैं, उन्हें शिक्षाविद् शिक्षण-अधिगम सामग्री का नाम देते हैं। शिक्षण अधिगम सामग्री वह सामग्री है जो शिक्षण अधिगम को गति देती हैं।

एडगर ब्रूस वैसले के शब्दों में - "श्रव्य-दृश्य साधन अनुभव प्रदान करते हैं । उनके प्रयोग से वस्तुओं तथा शब्दों का सम्बन्ध सरलता से जुड़ जाता है। बालको

के समय की बचत होती है, जहाँ बालकों का मनोरंजन होता है वहाँ बालकों की कल्पना शक्ति तथा निरीक्षण शक्ति का भी विकास होता है।''

स्पष्ट है शिक्षण सह सामग्री का प्रयोग हम जितना ज्यादा करेंगे उतना ही शिक्षण प्रभावी और अधिगम रुचिकर होगा।

आवश्यकता व महत्व

यह बिल्कुल सत्य है जब सीखने में हाथ-पैर, आँख, कान, नाक, मन आदि इन्द्रियों का प्रयोग करते हैं तो हम जल्दी उस ज्ञान को ग्रहण कर लेते हैं। शिक्षण अधिगम सामग्री से शिक्षण में केवल सरलता ही नहीं आती वरन नवीनता का भी समावेश होता है और नवीनता स्वयं में आकर्षक होती है। इसके प्रयोग से शिक्षण में एकाग्रता अपने आप आती है और कक्षागत अनुशासन की समस्या अपने आप हल हो जाती है।

मैकोन तथा **रॉबर्ट्स** के शब्दों में शिक्षक शिक्षण अधिगम सामग्री के द्वारा छात्रों की एक से अधिक इन्द्रियों को प्रभावित करके पाठ्यवस्तु को सरल, रुचिकर तथा प्रभावशाली बनाते हैं।

महत्व -

- शिक्षण प्रक्रिया में क्रियाशीलता बनी रहती है। आत्म विश्वास में वृद्धि होती है।
- सीखने में अपेक्षाकृत कम समय लगता है।

- प्राप्त ज्ञान स्थायी होता है।
- बच्चों में एक दूसरे का सहयोग करने की भावना बढ़ती है।
- कक्षा नियोजन की प्रक्रिया सरल हो जाती है।
- बच्चों को एक-दूसरे से विचार-विमर्श का अवसर मिलता है।
- कक्षा में नियमित उपस्थिति बढ़ जाती है।
- शिक्षक शिक्षण के अन्य पहलुओं पर ध्यान दे पाता है।
- नया प्रवेश पाये छात्र कक्षा में जल्दी घुल-मिल जाते हैं।
- सीखने की उपलब्धि ज्यादा होती है।

शिक्षण अधिगम सामग्री उत्तम कहलायेगी जो -

- आसानी से उपलब्ध हो या निर्मित की जा सकती हो।
- शिक्षण अधिगम के बीच पुल का काम करती हो।
- विषयवस्तु को अच्छी तरह समझाती हो।
- कक्षा के सभी स्तर के छात्रों को सीखने के लिए प्रेरित करने वाली हो।
- कठिन, अमूर्त विषयों का सजीव रेखांकन करने में सहायक हो।
- शिक्षाविदों ने खेल, गीत, नाटक को सर्वोतम सहायक सामग्री के रूप में निरुपित किया है।

शिक्षण अधिगम सामग्री के प्रकार -

शिक्षण में प्रभावकारिता बढ़ सके, छात्रों की सीखने की प्रक्रिया में वृद्धि हो एवं प्राप्त ज्ञान स्थायित्व को प्राप्त करे तथा शिक्षण के स्तर को ऊँचा करने के लिए

स्कूल में शिक्षण अधिगम सामग्री का होना अत्यन्त आवश्यक है। वस्तुतः शिक्षण अधिगम सामग्री दृश्य-श्रव्य साधन ही है। इनमें कुछ तो स्वं निर्मित, कुछ प्रकृति प्रदत्त तथा कुछ बाजार से खरीदे हुए हो सकते हैं। वैसे अधिकांश सामग्री का निर्माण किया जा सकता है।

स्वरूप के आधार पर शिक्षण अधिगम सामग्री के प्रकार निम्न हैं -

दृश्य सामग्री

श्रव्य सामग्री

दृश्य श्रव्य सामग्री

दृश्य सामग्री(Visual material) - दृश्य उपकरणों में केवल आँखों का उपयोग होता है। इनमें नमूने, मानचित्र, कार्टून तथा ग्रॉफ श्यामपट्ट, चार्ट, मॉडल , फ्लैशकार्ड, फ्लैनेल बोर्ड आदि महत्वपूर्ण है।

श्रव्य सामग्री(Audio material) - श्रव्य उपकरण वे उपकरण हैं, जिनमें छात्र अपनी श्रवणेन्द्रियों का उपयोग करते हैं । इन उपकरणों में रेडियो, ग्रामोफोन तथा टेपरिकॉर्डर, ऑडियो, सी0डी0/कैसेट प्लेयर आदि प्रमुख हैं।

श्रव्य-दृश्य सामग्री - श्रव्य-दृश्य उपकरण वे उपकरण कहलाते हैं जिनमे चक्षु और कर्ण दोनों इन्द्रियों का प्रयोग होता है। इस प्रकार के उपकरणों में चलचित्र और टेलीविजन मुख्य रूप में आते हैं।

स्वरूप के आधार पर शिक्षण अधिगम सामग्री का वर्गीकरण

दृश्य सामग्री-

- प्रतिरूप
- चित्र तथा पोस्टर
- श्यामपट्ट
- माया-दीप
- पत्र पत्रिकाएँ एवं समाचार पत्र
- चित्रदर्शक
- वास्तविक पदार्थ
- रेखाचित्र तथा खाके
- मानचित्र
- सन्दर्भ पुस्तकें, एटलस तथा ग्लोब
- स्लाइड्स, फिल्मस्टिंप
- पाठ्यपुस्तकें, पूरक पुस्तकें
- बुलैटिन बोर्ड, चुम्बक बोर्ड
- भ्रमण तथा यात्राएं
- संग्रहालय

श्रवण सामग्री -

- ग्रामोफोन आकाशवाणी
- टेपरिकार्डर

SACHIN ACADEMY

- लिंग्वाफोन
- भाषा प्रयोगशाला
- स्टीरियो रिकार्डर
- टेलीफोन वार्ता
- मानव स्वर आदि

श्रव्य दृश्य सामग्री -

- दूरदर्शन चलचित्र
- क्लोज सर्किट टेलीविजन
- वीडियो कैसेट्स
- प्रयोगशालाएँ
- कार्यशालाएँ
- प्रदर्शन
- रोल-प्ले
- डांमा, खेल
- सैटेलाइट टी0वी0 वर्किंग
- इण्टरनेट
- लैपटॉप आदि

बिन्दु -

SACHIN ACADEMY

- दृश्य सामग्री के अन्तर्गत पेड़-पौधों का एकत्रीकरण करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि कहीं कोई विषैला जीव काट न ले।
- मॉडल में कनेक्शन 1⁄4 बिजली का 1⁄2 भली-भाँति लगाना चाहिए।
- रबर की चप्पलें या जूते पहनकर ही विद्युत सम्बन्धी कार्य करना चाहिए।
- विद्युत की जगह सैल का प्रयोग करना चाहिए।
- अधिक महंगी सामग्री का उपयोग यथा सम्भव कम किया जाए।
- सामग्री के उपयोग में अधिक समय नष्ट नहीं करना चाहिए।
- उपयोग के बाद अधिगम सहायक सामग्री को तुरन्त हटा लेना चाहिए।
- शिक्षण अधिगम सामग्री उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक हो।
- शिक्षण अधिगम सामग्री बच्चों व कक्षानुरूप हो।
- श्रव्य-दृश्य सामग्री का प्रदर्शन कक्षा में उचित स्थान पर, उचित विधि से किया जाना चाहिए।

उपलब्धता के आधार पर शिक्षण अधिगम सामग्री का वर्गीकरण-

- ✓ अध्यापकों एवं बालकों द्वारा निर्मित सामग्री
- ✓ बाजार से क्रय सामग्री
- ✓ विभाग द्वारा प्रदत्त सामग्री
- ✓ प्रकृति से प्राप्त वस्तुएं /सामग्री

अध्यापकों एवं बालकों द्वारा निर्मित सामग्री

दृश्य सामग्री के अन्तर्गत कुछ शिक्षण अधिगम सामग्री इस प्रकार की है जो कि शिक्षकों एवं छात्रों के द्वारा तैयार की जा सकती है तथा जिनका प्रयोग शिक्षण के समय किया जा सकता है। छोटे बालकों को मिट्टी के खिलौनों से एवं मिट्टी

में खेलने में बहुत आनन्द आता है। यदि अध्यापकों के द्वारा बालकों से कहा जाय कि आप अपने घरों से 10 मिट्टी की गोली बनाकर लायेंगे। बच्चे जब गोली बनाकर लाएं तो अध्यापक गोलियों को अपने पास एकत्रित करके उनका प्रयोग गणित विषय में गिनती पढ़ाने के लिए कर सकता है। इसी प्रकार, शिक्षक द्वारा भी अनेक प्रकार की शिक्षण सामग्री का निर्माण किया जा सकता है, जैसे- गन्ने के चैकोर टुकड़ो पर हिन्दी वर्णमाला के सम्पूर्ण अक्षरों को पृथक् रूप से लिखना। इस सामग्री का प्रयोग हिन्दी में किया जा सकता है। अध्यापक द्वारा अंग्रेजी, शिक्षण, गणित शिक्षण एवं विज्ञान शिक्षण आदि विषयों में चार्ट, पोस्टर, रेखाचित्र एवं वृत्त आदि के चित्र निर्मित करके तथा उनका सही प्रयोग करके शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सारगर्भित एवं रोचक बनाया जा सकता है।

विभाग द्वारा प्रदत्त सामग्री

शिक्षा के क्षेत्र में गुणवत्ता बढ़ाने हेतु तथा शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावी बनाने हेतु उत्तर प्रदेश शिक्षा विभाग द्वारा भी शैक्षिक सामग्री उपलब्ध करायी जाती है। इसमें ऑप्रेशन ब्लैकबोर्ड सामग्री, गणित किट,विज्ञान किट, पाठ्यपुस्तकें, प्रशिक्षण साहित्य, अनुपूरक अध्ययन सामग्री तथा शिक्षक संदर्शिकाएं आदि प्रमुख होती हैं। इनके प्रयोग द्वारा शिक्षण कार्य सरल हो जाता है।

प्रकृति से प्राप्त वस्तुएं या सामग्री

प्रकृति से प्राप्त अनेक वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिसका प्रयोग सरलता से शिक्षण अधिगम सामग्री के रूप मे किया जा सकता है। इन वस्तुओं को प्राप्त करने में किसी प्रकार का

व्यय नहीं होता तथा वास्तविक रूप में वस्तुओं का ज्ञान होता है। वर्तमान समय में भारतीय विद्यालयों में प्रकृति से प्राप्त वस्तुओं को शिक्षण अधिगम सामग्री के रूप में प्रयोग करने पर अधिक बल दिया जाता है क्योंकि प्रत्येक कार्य के लिए धन की उपलब्धता सम्भव नहीं होती। अतः प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं का प्रयोग ही सर्वोत्तम माना जाता है।

उत्तम शिक्षण अधिगम सामग्री की विशेषताएं

एक अच्छे एवं व्यवस्थित शिक्षण का उद्देश्य अच्छा अधिगम होता है। अधिगम सदैव उद्देश्यपूर्ण तथा लक्ष्योन्मुखी होना चाहिए। इन सभी तत्वों की प्राप्ति के लिए अच्छी व उत्तम अधिगम सामग्री की आवश्यकता होती है। वर्तमान समय मे शिक्षण अधिगम सामग्री का प्रयोग शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में अनिवार्य हो गया है। वर्तमान समय में शिक्षा में गुणात्मक सुधार हेतु बहुउद्देश्य शिक्षण अधिगम सामग्रियों के विकास पर बल दिया जा रहा है। इसके प्रयोग के उद्देश्यो को प्राप्त करने में सफलता उस अवस्था में प्राप्त हो सकती है, जब यह सामग्री निम्नलिखित विशेषताओं से युक्त हो।

बिना लागत के प्राप्त सामग्री

बिना लागत के प्राप्त सामग्रियों का प्रयोग व्यापक रूप से किया जा सकता है। इन सामग्रियों के लिए हमको धन की आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकार की सामग्री के अन्तर्गत प्रकृति प्रदत्त वस्तुएँ एवं प्रयोग रहित सामग्री आती है। उदाहरणार्थ वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर को आकर्षक, ढंग से लिखने के लिए पुरानी

किताबों, कापियों, रजिस्टरों के फटे-टूटे गत्तों को निकाल कर, उनको चकोर अथवा इच्छानुसार आकारों में काटकर उस पर अक्षरों को रोचक ढंग से लिखने के लिए प्रयोग में ला सकते हैं। इस प्रकार की सामग्री बिना लागत के ही सरलता से प्राप्त एवं निर्मित की जा सकती है।

अल्प लागत की सामग्री

अल्प लागत की शिक्षण अधिगम सामग्री की विशेषता यह है कि इसको निर्मित करने में बहुत ही कम लागत लगती है। इस प्रकार की अधिगम सामग्री सर्वोत्तम मानी जाती है क्योंकि सरकार आर्थिक रूप् से पूर्णतः सक्षम नहीं है कि प्रत्येक विद्यालय को धन उपलब्ध करा सकें। इस प्रकार की शिक्षण अधिगम सामग्री का प्रयोग व्यापक स्तर पर किया जा सकता है।

बहुउद्देश्यीय सामग्री (Multipurpose material)

इस प्रकार की अधिगम सामग्री के द्वारा शिक्षण के अनेकों उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है, जैसे मानचित्र या किसी चार्ट को छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं तो हमको उसके आकार, रंग एवं कलात्मकता पर पूर्ण विचार करना चाहिए क्योंकि इस शिक्षण अधिगम सामग्री का उद्देश्य छात्रों को अनिवार्य रूप से सूचना प्रदान करना तथा आकार, स्थान आदि का ज्ञान कराना होगा। शिक्षण सामग्री छात्रों को शारीरिक एवं मानसिक रूप से क्रियाशील रखने तथा छात्रों में विभिन्न दक्षताओं का विकास करने वाली हो।

एक से अधिक कक्षाओं में प्रयोग -

शिक्षण अधिगम सामग्री का निर्माण करते समय इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि उसका प्रयोग एक से अधिक कक्षाओं मे किया जा सके क्योंकि प्रत्येक कक्षा के लिए पृथक रूप से शिक्षण अधिगम सामग्री निर्मित करने पर धन एवं समय का अपव्यय होगा। उदाहरणार्थ- विज्ञान किट व गणित किट का प्रयोग कक्षा 1 से लेकर 5 तक की कक्षाओं में किया जा सकता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि विभिन्न कक्षाओं की पाठ्यवस्तु में सहसम्बन्ध पाया जाता है।

एक से अधिक विषयों में प्रयोग -

शिक्षण सामग्री की विशेषता यह भी है कि यदि उसका निर्माण करते समय सभी कक्षाओं का ध्यान रखा जाए तो उसका प्रयोग एक से अधिक विषयों के लिए किया जा सकता है। जैसे- वनस्पति विज्ञान की शिक्षण अधिगम सामग्री का प्रयोग हमारा परिवेश एवं पर्यावरणीय अध्ययन में सरलता से किया जा सकता है। हिन्दी से सम्बन्धित शिक्षण अधिगम सामग्री का प्रयोग संस्कृत शिक्षण में भी किया जा सकता है।

एक से अधिक पाठों में प्रयोग -

श्रेष्ठ या उत्तम अधिगम सामग्री उसको माना जाता है जो कि एक से अधिक पाठों में प्रयुक्त की जा सकें । जैसे भूगोल शिक्षण में मानचित्र का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए, जिससे कि वह प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र गेहूँ, उत्पादक क्षेत्र,

चावल उत्पादक क्षेत्र एवं नदियों को भली-भांति प्रदर्शित कर सके। इसके लिए हमें विभिन्न रंग एवं संकेतों का प्रयोग एक ही मानचित्र में करके भिन्न-भिन्न वस्तुओं को प्रदर्शित करना चाहिए। इससे धन एवं समय की बचत होती है।

विषयवार पाठ के अनुरूप -

शिक्षण अधिगम सामग्री पाठ के अनुरूप तथा विषय से सम्बन्धित होनी चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक को सम्पूर्ण पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् यह निर्धारित करना चाहिए कि इस पाठ में प्रमुख रूप से किस प्रकार की शिक्षण अधिगम सामग्री का प्रयोग आवश्यक है, जिसमें बच्चों का ज्ञानवर्धन हो सके।

शैक्षिक उपयोगिता -

शिक्षण अधिगम सामग्री का निर्माण उसकी शैक्षिक उपयोगिता को ध्यान में रखकर करना चाहिए अर्थात् इन सामग्रियों का उद्देश्य विषयवस्तु को स्पष्ट रूप से छात्रों के लिए बोधगम्य रूप में प्रस्तुत करना है। हमको यह मानकर शिक्षण अधिगम सामग्री का निर्माण एवं प्रयोग नहीं करना है कि वह अनिवार्य है वरन् उसकी आवश्यकता एवं उपयोगिता को ध्यान में रखकर उसका प्रयोग एवं निर्माण करना है।

बालकों की रुचि, आयु एवं मानसिक स्तर के अनुरूप -

वर्तमान में शिक्षा का स्वरूप बालकेन्द्रित है अर्थात् शिक्षण अधिगम सामग्री की उत्तमता के लिए आवश्यक है कि यह छात्रों की रुचि, आयु एवं मानसिक स्तर के अनुकूल होनी चाहिए। जो छात्रों के लिए रोचक एवं आकर्षक हो और विषयवस्तु को समझने में वे उस सामग्री की आवश्यकता का अनुभव करें।

उदाहरणार्थ- बालकों को गिनती एवं पहाड़े सिखाने के लिए कंकड़ों एवं चार्टों का प्रयोग करना। यदि छात्र 8 से 14 वर्ष के मध्य हैं तो उनके लिए शिक्षण अधिगम सामग्री के रूप में प्रतिरूप, चार्ट, प्रोजेक्टर, टेपरिकॉर्डर एवं दूरदर्शन के शैक्षिक कार्यक्रमों को प्रस्तुत किया जा सकता है।

कक्षा व्यवस्था के अनुसार सामग्री का आकार प्रकार

उत्तम शिक्षण अधिगम सामग्री के निर्माण हेतु यह आवश्यक है कि उसके तैयार करने से पूर्व जिस कक्षा में उसे प्रयुक्त किया जाना है उसके आकार एवं छात्र संख्या पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। यदि छात्र संख्या कम तथा कक्षा-कक्ष का आकार छोटा है तो शिक्षण अधिगम सामग्री का आकार छोटा भी हो सकता है। परन्तु अधिक छात्र संख्या एवं बड़े कक्षा-कक्ष के लिए शिक्षण अधिगम सामग्री का आकार भी बड़ा होना चाहिए।

सरलता से उपयोग में लायी जाने योग्य

उत्तम शिक्षण अधिगम सामग्री की विशेषता है कि वह उपयोग में सरल एवं बोधगम्य हो। इसे निर्माण करने में अधिक समय व धन का अपव्यय नहीं करना चाहिए तथा न ही किसी विशेष व्यवस्था का आयोजन करना चाहिए। दूसरे शब्दों

में, उत्तम शिक्षण अधिगम सामग्री उसे कहते हैं, जो कि प्रयोग एवं निर्माण में सरल होती है, जैसे चार्ट, पोस्टर, मॉडल एवं प्रकृति प्रदत्त वस्तुएँ आदि।

हानि रहित शिक्षण सामग्री

शिक्षण अधिगम सामग्री की एक विशेषता यह भी है कि उसके प्रयोग से छात्रों को किसी प्रकार की कोई हानि नहीं पहुँचनी चाहिए। प्रायः छात्र वीडियो रिकॉर्डिंग एवं चलचित्र में सम्बन्धित कार्यक्रमों को शिक्षण अधिगम सामग्री के रूप में अधिक पसन्द करते हैं। इनका अधिकाधिक प्रयोग नहीं करना चाहिए। आवश्यकतानुसार प्रयोग करना चाहिए क्योंकि ये छात्रों की आँखों पर हानिकारक प्रभाव डाल सकते हैं।

शिक्षण अधिगम सामग्री के निर्माण, प्रयोग तथा रख रखाव में सावधानियाँ

शिक्षण अधिगम सामग्री पर ही उस की सफलता एवं असफलता निर्भर करती है। अतः निर्माण से पूर्व उन समस्त तथ्यों पर विचार करना आवश्यक है जो कि इसको सर्वोत्तम, उद्देश्यपूर्ण एवं श्रेष्ठ सामग्री के रूप में विकसित करते हैं। इसलिए शिक्षण अधिगम सामग्री के निर्माण से पूर्व निम्नलिखित सावधानियों को ध्यान में रखना चाहिए -

- उद्देश्य की पूर्ति
- कक्षा-कक्ष के अनुसार आकार
- छात्रों के स्तरानुकूल
- प्रमुख बिन्दुओं का प्रदर्शन

- रोचक एवं आकर्षक
- प्रभावशाली
- अल्प लागत
- सृजनात्मक पूर्ण
- रंगों का उचित प्रयोग
- विषयवस्तु की वास्तविकता
- विषय की स्पष्टता
- प्राकृतिक वस्तुओं का अधिकाधिक प्रयोग
- अनुपयोगी पदार्थों का प्रयोग
- सुन्दर, सुडौल व स्पष्ट
- बहुउद्दशीय स्वरूप का निर्धारण

शिक्षण-अधिगम सामग्री के निर्माण में सावधानियाँ व रख रखाव के लिए जो तथ्य महत्वपूर्ण हैं -

- अच्छी वस्तुओं का प्रयोग
- रखने का उचित स्थान
- कीड़ों से बचाव
- समय-समय पर सफाई
- शिक्षण सामग्री रखने का पृथक कक्ष
- मरम्मत
- आच्छादन
- प्रयोग में सावधानी

SACHIN ACADEMY

SACHIN
ACADEMY